(सत् पुरूष योगीराज महात्मा मंगत राम जी महाराज)

श्री सद्गुरूदेव मंगतराम जी महाराज

श्री सत्गुरूदेव जी द्वारा तमोगुणी वासना का स्वरूप

जब तमोगुणी वासना प्रधान जीवों में आ जाती है, तब स्वार्थ अन्धकार इस कदर बढ़ जाता है कि तमाम जीव आपस में कट कट करके मरते हैं-एक दूसरे का हक हासिल करने की खातिर। और कोई शाँति का रास्ता दिखलाई नहीं देता। एक दूसरे की नाश की खातिर दिन-रात लगे रहते हैं। इस कदर वासना अन्धकार हर एक जीव को घेर लेता है कि छल कपट के बगैर एक बचन भी करना कठिन हो जाता है। तब अधिक उपद्रव संसार में प्रगट होने लगता है और तमाम जीव तमोगुणी वासना के जाल में आकर हर प्रकार की उन्नति को नष्ट करके अधिक दुःखी होते हैं।

(श्री सत्गुरू देव महात्मा मंगतराम जी महाराज)

विषय-सूची

क्र. सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1	समता दर्पण टाईटल पृष्ठ	1
2	सतगुरू जी का सत् उपदेश	2
3	विषय-सूची	3
4	महामन्त्र	4
5	जीवन का लक्ष्य - परम शांन्ति	5-6
6	मानव मात्र को सत् सन्देश	7-9
7	ज्ञानयोग	10-12
8	सत उपदेश अमृत	13-14
9	मुक्ति तथा उसके साधनों की दुर्लभता	15
10	साधन चतुष्टय	16
11	निष्काम सेवा	17-18
12	दान का सिदान्त	19
13	वाणी (पूर्ण गुरू)	20-25
14	कामिल (पूर्ण) गुरू की पहचान	26-27
15	धर्म ग्रन्थों पर वार्तालाप	28-29
16	मघर माह	30-31
17	काटों की बाड़, यह संसार	32
18	सच्चा सुख कब मिलता है	33
19	महाराज जी गुरु को पास कैसे समझा जाये	34
20	हमारा दुःख कैसे दूर हो ?	35
21	सच्चे हृदय का निमंत्राण	36
22	विरह और वैराग्य	37-38
23	नम्रता या दीन भाव	40-41
24	मसीह के दस नियम	42

कुल पृष्ठ 44 (टाइटल पृष्ठ 1,2,43.44)

सरप्रस्त — श्री रतन लाल भाटिया जी

सम्पादक — श्री मुकन्द लाल सुनेजा

मुद्रक — श्री दीप चन्द वर्मा

Printed by: Sh Deep Chand Verma & Published by: Sh. Deep Chand Verma (Ph.: 9818815824) On behalf of (or owned by) Sangat Samtavad Samta Yog Ashram Jagadhari (HARYANA) and printed at Saurabh Printers Pvt. Ltd., 67A-68, Ecotech Extn.-I, Kasna, Greater Noida & Published at: Samta Yog AshramRing Road, Naraina, New Delhi-110028. Editor: Sh. Mukand Lal Soneja (Ph.: 011-28549405, 9868149450

महामन्त्र

ॐ ब्रह्म सत्यम्
निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा
सर्व व्यापक कल्याण मूरत परमेश्वराय
नमस्तं।

भावार्थ

पारब्रह्म परमेश्वर पहले भी सत्य था, अब भी सत्य है और आगे भी सत्य ही होगा। वह अमर तत्व आकार रहित है। वह जन्म मरण से भिन्न शक्ति है। उस जैसा दूसरा और कोई नहीं। वह सभी स्थानों पर और सभी घटो में एक समान रमा हुआ है। वह मुक्ति दाता है। ऐसे परम 'शब्द' स्वरूप परमेश्वर को नमस्कार है।

जीवन का लक्ष्य - परम शांन्ति

सम्पादकीय

आज के कलयुग में हर एक प्राणी अपने कारोबार में इतना व्यस्त हो चुका है कि उसको अपने दैनिक कार्यों के लिए भी समय निकाल पाना असम्भव सा प्रतीत होने लगा है। समय पर खाना-पीना, सोना-जागना, परिवार के कार्य व समय पर अपनी दै निक दिनचर्या के लिए समय निकाल पाना असम्भव हो गया है। इस का मुख्य कारण क्या है ? इस का कारण आज के आधुनिक युग में हर एक प्राणी मात्र ने अपने जीवन का लक्ष्य, झूठी माया को एकत्रित करने का बना रखा है। झूठी माया प्राप्ती के लिए उसको चाहे कुछ भी करना पड़े यानी चोरी, छल, कपट, जुआ, किसी किस्म का भी व्याभिचार क्यों न धारण करना पड़े जैसे कर्म, कुकर्म यहाँ तक कि अपना परिवार, सम्बन्धी, मित्र आदि को भी छोड़ने को तैयार है। जबकि मानव मात्र का परम लक्ष्य परम शान्ति अथवा परम आनन्द की प्राप्ति है। वह परम शान्ति व परम आनन्द इस जीव को झूठी माया में नहीं बल्कि आत्मा में प्राप्त होगा जिसके आधार पर शरीर खड़ा है और सरजीवित हो रहा है। उसकी परायणता से ही लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है और कोई उपाय नहीं। यही सतपुरुषों का निर्णय है।

श्री सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी योग मार्ग बोध में फरमाते हैं। वास्तव में हर एक जीव चाहे किसी भी शरीर में मौजूद है अपने शारीरिक भोगों को चाहता हुआ नाना प्रकार के यत्न प्रयत्न करता हुआ अपनी शारीरिक यात्रा को पूर्ण कर रहा है चाहे ऐसे यत्न से पूर्णताई हासिल होवे या न होवे। मगर सब की आन्तरिक तृष्णा ऐसे ही बनी रहती है। यह ही संसार की असल दौड़ का सरुप है। संसार में सुखी वह ही है, जिसने संसार के भोगों से मुक्ति प्राप्त की है। वह ही सत् तत्त को जानने वाला है। उसने संसार की बाजी को जीत लिया है। सब पदार्थों के होते-होते जिसका चित्त आत्म परायण रहता है। वह ही भोगों से मुक्त हुआ है।

श्री सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज फरमा रहे हैं कि शरीर की शुद्धि स्नान से, पवित्र आहार से पवित्र ब्यौहार और पवित्र संगत से होती है। मन की शुद्धि सत विचार, दान, तप, वैराग और सतनाम के निदिध्यास से होती है। बुद्धि की शुद्धि दृढ़ निश्चिय से एक ईश्वर सरुप में लगाने से होती है। बुद्धि जिस वक्त पूर्ण आत्म परायण हो जाती है, उस वक्त मन, इन्द्रियों पर काबू पा जाती है और शुद्ध अविनाशी सरुप में हर वित्त मग्न रहती है। यह ही अवस्था असली समता शान्ति की है।

ईश्वर शक्ति जिस तरह सब जगह ओर सब वक्त में एक सरूप में विचरती है, उसी तरह महापुरुषों ने उस आत्म शक्ति को अनुभव करके तमाम साधना के सरूप को प्रगट करके शांति का रास्ता दिखलाया है। मगर जो चलने वाला है वह एक दिन मन्ज़ले मकसूद को पहुँच जावेगा और जो बैठा हुआ ही बातें बनाता है वह असली गुमराह करने वाला है और न दूसरों को तसल्ली दे सकता है।

संक्षेप में:-

सुख का सम्बन्ध मन से और शांति का
सम्बन्ध आत्मा से है।
भौतिक सुख नाशवान हैं और आध्यात्मिक
सुख शांति अविनाशी है। क्रियात्मिक जीवन
तीन प्रकार के दृष्टिकोण अपनाने से
जीवन में शाश्वत सुख और शाँति अनिवार्य
रुप से प्राप्त होती है।
1 जीवन में निष्काम सेवा भाव धारण करना।
2 जीवन में प्रेम को अटूट अंग बनाना।
3 मानव जीवन को मुक्ति की नौका बनाना।

जीते जी मरना क्या है ?
प्रेमी छोड़ना क्या है जीते जी मरना है।
माया, मोह और अभिमान ही तो छोड़ना
है। मरने से पहले मरना है। सब तप, जप,
ध्यान, योग इसी के वास्ते हैं ताकि दीनता,
निर्मानता, गरीबी आ जाये सब कुछ प्राप्त
हो, फिर कहे मेरा कुछ नहीं। सब कुछ प्रभु
का है, यह शरीर भी मेरा नहीं। हर किस्म
की ताकत प्राप्त हो फिर निर्मान रहे। नानक
जैसे परम फकीर हर तरह की शक्ति रखने
वाले जब बोलते हैं, कहते हैं, नानक नीच
कहे विचार:- तेरा भाना मीठा लागे,
नानक नाम पदार्थ मागें। कमाई करके
जज्ब करना किसी विरले का ही काम है।
जिस तरह मारवाड़ी सज्जन धन की कमाई
कैसे सम्भाल के रखते हैं कि ब्यान से बाहर
है। बाहर से गरीब बने रहते हैं, मैली सी
धोती बाँधी होती है, जितना भी धन आये जरा
नहीं उभरते। इसी तरह ज्ञानी विचारवान भी
निर्मानता को धारण करके संसार में विचरते
हैं। मोटी माया, धन, पदार्थ, परिवार, घर
बार त्याग भी दिया लेकिन मन के अन्दर
अगर अहंकार खड़ा है, तो कुछ नहीं त्यागा।
बल भी, बुद्धि भी हो, धन-माल, इकबाल भी
हो, तो कोई विरला ही माई का लाल इस
अहकार से रहित हो सकता है।
(श्री सत्गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज)

प्रलय का स्वरुप

प्रेमी, लो सुनो! प्रलय कई हैं, नित प्रलय, निमित प्रलय, प्रबोध प्रलय, विज्ञान प्रलय और अत्यंत प्रलय।

नित प्रलय:- रोजाना तबदीली यानी सुबह होती है, शाम होती है, सूरज आ रहा है, जा रहा है, चाँद घट बढ़ रहा है। यह नित की प्रलय है।

निमित प्रलय:- परिवार में किसी की मृत्यु जैसे बाप, दादा, माँ कोई सगा सम्बंधी मर जाना वगैरा वगैरा। यह निमित प्रलय है।

प्रबोध प्रलय:- संसार को नाशवान जानना और ईश्वर को सत् करके जानना। यह प्रबोध प्रलय है। विज्ञान प्रलय :- अपने आप को सब में मुहीत (व्यापक) देखना और अन्दर से असंग रहना। यह विज्ञान प्रलय है।

अत्यंत प्रलय:- अपने स्वरूप का बोध हो गया और सब संसार खत्म हो गया व निसंकल्प हालत हो गयी। यह अत्यंत प्रलय है।
(श्री सत्गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज)

भक्ति के रास्ते में बाधक क्या वस्तु है ?

(प्रेमी, सूक्ष्म वासना ही भक्ति में बाधक है। तत्ववेत्ता महापुरूषों की बुद्धि इतनी तेज होती है। कि वासना को उठने नहीं देते। अगर एक लम्ह भी वासना उनके अन्दर उठती है तो भूचाल आ जाता है। वह होने न होने को ईश्वर आज्ञा में सर्पण करते हैं। निंदावा होकर विचरते हैं।

मानव मात्र को सत् सन्देश

मानव मात्र का लक्ष्य परम शान्ति है और लक्ष्य की पूर्ति के लिये मानुष घोला मिला हुआ है । हम लोग चौबीस घन्टे जो कुछ भी कर रहे है परम शान्ति के लिये लेकिन बजाय शान्ति के अशान्ति प्राप्त होती है। अब विचार करना है कि लक्ष्य की पूर्ति कैसे हो। सतपुरुषों ने खोज की है और अपना अनुभव हमारे सामने रखा है और प्राचीन सत्पुरूषों के सत जीवन को हमारे सामने रखा है और सिद्ध किया है कि जब तुम सत्ग्रन्थों और सब सत्पुरूषों के जीवन को गहरी गौर से देखोगे तो यह पाँच सुनहरी असूल पाओगे।

1. सादगी 2. सत् 3. सेवा 4. सत्संग 5. 2. ससिमरण

प्रभु प्रेमियों को हर समय विचार करना होगा कि क्या यह सत् नियम मेरे क्रियात्मक जीवन में आ रहे हैं। प्रभु प्रेमी जब इन सत नियमों का मूर्तिमान स्वरूप हो जायेगा तो परम लक्ष्य अर्थात परम शान्ति को पायेगा। चारों वेद छ. शास्त्र, उपनिषद, गीता, रामायण, गुरू ग्रन्थ साहिब, कुरान शरीफ, अंजील में गौर से पढने से यह पाँच असूल मिलेंगे जिनको सब सत्पुरूषों ने अपनाया और परम स्थिति को प्राप्त हुए। इन सब नियमों के प्रताप से निष्कामता, र्निमाणता, उदासीनता, नेहचलता और परउपकार आदि गुण उनमें प्रकट हुए।

श्री सत्पुरूष महात्मा मंगत राम जी महाराज ने ग्रन्थ श्री समता विलास में जो सत्संग के बारे में फरमाया बड़े गौर से इन पर विचार करें। श्री सतगुरूदेव जी ने सत्संग का दर्जा बड़ा ऊँचा रखा है और बताया कि सत का संग अर्थात मन का निरन्तर सतसिमरण में लगे रहना, यह पहले दर्जे का उच्चकोटि का सत्संग है। दूसरे दर्जा का सत्संग सतपुरुषों के विचारों को पढना और सुनना।

तीसरे दर्जा का सत्संग सतपुरुषों के जीवन के हालात और उनके आर्दश जीवन को गौर से पढना और विचार करना। सत्पुरूष ग्रन्थ श्री समता विलास में फरमाते हैं, सत्संग वह ही यर्थाथ है जिसमें एकत्र बैठ कर हर एक गुण अवगुण प्रेमपूर्वक विचार करें और सुने यानि जिसमें जो भी विचार होवे वह मन में जजब हो जावे। अगर ऐसा सत्संग नहीं तो महज़ नुमायशगाह बनी हुई है। उस जगह जाने का कोई फायदा नहीं, वह नुमायश बुद्धि को मलीन करने वाली है। 'आजकल हम लोग देखते हैं कि कोई उत्सव या त्यौहार आता है या कोई विशाल सत्संग रखा जाता है तो उस स्थान को अच्छी तरह लाईट से सजाया जाता है और हजारों रुपया खर्च किया जाता है और तरह-तरह के मन को बहलाने के दृश्य बनाये जाते हैं और प्रोग्राम में भी अधिक से अधिक मनोरंजन को प्रमुख रखा जाता है ताकि पब्लिक की मनोरूचि बढ़े। जिस चमक दमक और रास रंग मन को प्रसन्नता हो वो प्रोग्राम रखे जाते हैं। श्री सतगुरूदेव जी अपनी वाणी में फरमाते हैं:-

मनमानी अपनी करी, ना गुरू सीख सुहाई।
'भगत सखा ना कोउ भयो, जब सिर पर बिपता आई ।।

सत्पुरूष ने मन की हालत का वर्णन किया है कि मन की दौड़ शरीर तक है इससे आगे नहीं। चूँकि शरीर भोगों और विकारों का समूह

है इस लिए मन तरह-तरह के भोग पसन्द करता है। पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ और पाँच करम इन्द्रियों के भोग व पाँच विकारों की तृप्ति चाहता है। इस लिए अगर इसके मुताबिक प्रोग्राम होगा तो आम जनता देख कर प्रसन्न होगी और अधिक इकट्ठी होगी। इसके बारे में सत् पुरूष फरमाते हैं। ऐसी जगह जाने से कोई फायदा नहीं इससे बुद्धि और मलीन होगी। सत्संग वह यर्थाथ है जिससे बुद्धि शुद्ध हो और बलवान हो। सतपुरुष ग्रन्थ श्री समता विलास में एक ओर जरूरी बात फरमाते हैं **हर एक वाक्यात, धर्मनीति का विचार सही तरीका से करना और सुनना इस धारणा का नाम सत्संग है।** सत्संग में बैजन्तर इतना फायदा नहीं देते जितना कि बिल्कुल शान्तमयी होकर विचार सुना जाये। सत्संग के असली मायने यह हैं कि हर एक बात की असलीयत पता में आ जाये। आगे मन खुद कोशिश करने लगता है। अगर असलियत का पता नहीं तो सत्संग क्या सुना और निध्यास कैसे हो सकता है। इस वास्ते सत्संग असली मायने में होवे तब शान्ति मिलती है। "अब हम लोग विचार करें कि हमारे समाज में ज्यादातर सत्संग का क्या रूप बना हुआ है! सत्संगों में सतपुरुषों की वाणी पर गहरी गौर करके विचार नहीं होता। वाणी पाठ के रूप में या अखण्ड पाठ के रूप में पढ़ी जाती है और लोग यह विचार करते हैं कि हमारी मनोकामना पूर्ण हो जायेगी।

ऐसे सत्संगों को पसन्द किया जाता है जहाँ तरह-तरह के साज बजाये जायें और मौजूदा सिनेमा आदि तर्जों से गायन किया जाये। बैजन्तर इतने जोर से बजाये जाते हैं कि सत्पुरूषों के वाक्य ठीक से सुनाई नही देते, जो कि मंत्र हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कई वर्ष सत्संग करने के बावजूद जीवन बजाये सुधरने के बिगड़ता जा रहा है। इसलिये महापुरूषों ने कहा है कि हर एक वाक्यात और सत्पुरूषों के ज्ञान को आहिस्ता-आहिस्ता पढ़ो और विचार करो कि इससे मेरे लक्ष्य की पूर्ति होती है। अगर होती है तो इन सत नियमों को अभी तक क्यों धारण नहीं किया। अब तेजी से सतमार्ग पर बढ़ें और इन सत असूलों को अपनावें ताकि सतमार्ग में सफलता हो।

केवल सतसरूप का होवे परकाश।

सोही संगत साची चित भास॥
जो जाये सत सो पाये विवेक।
मारग का लाखे भेख॥
बिरह वैराग प्रेम परगासे।
सो ही संगत सच रूप निवासे॥
सत असत का पाये अनेक विचार|
जीवों होये का उद्धार॥
साची संगत सतपुरुषों होये बखान।
सो तत्त ज्ञान जाँ ही परधान॥
का इतिहास इतिहास परगासे।।
सगंत साची सो ही नर भासे॥

अगले चरण में श्री सत्गुरूदेव जी ग्रन्थ श्री समता विलास में फरमाते हैं कि सत्संग में किन बातों पर विशेष विचार होना चाहिए। श्री सतगुरूदेव जी फरमाते हैं, "निर्वैर, निर्विवाद, निसंशय, निर्माण स्वरूप का जहाँ विचार होवे वह सत्संग है। इसके बगैर सब बादमुबाद है।

(1) **निर्वैर** का अर्थ यह है कि किसी से वैर नही करना जो आत्मदेव मुझ में है वह सब में है। इस लिये सब में प्रभु व्यापक जान कर सब की प्रेम प्रीत से सेवा करनी चाहिए। सब सत्पुरूषों के जीवनमें यही हालात देखी गयी है। उन्होंने प्राणी मात्र की सेवा की और प्यार किया है।

(2) **निर्विवाद** का अर्थ यह है कि जीवन सुखमयी बने। जब तक हमारी मनोवृति सांसारिक प्रदाथों और भोगों को परम सुख मान रही है तब तक जीवन दुःखदाई बना रहेगा। जब जीवन की

हालत पर अच्छी तरह विचार करेंगे तो पता चलेगा कि इन्द्रियों के भोगों को भोगने में कोई कसर नही छोड़ी और सांसारिक पदार्थ इकट्ठे करने में दिन रात लगे रहे। परिणाम स्वरूप जीवन परम दुःखमयी होता जा रहा है। श्री सत्गुरूदेव जी ने फरमाया है- यह सब भोग पदार्थ परिवर्तन शील हैं। जो वस्तु स्वयं अधीर है और परिवर्तनशील है वह तुम्हें कैसे तृप्त कर सकती है। परम सुख रूप केवल आत्मा है जो नित प्राप्त है। उसमें वृति लगाने से परम सुखी हो सकता है।

(3)निंसंशय का अर्थ है कि दुनियाँ की हर पदार्थ की प्राप्ति में संशय बना रहता है कि प्रयास तो कर रहा हूँ। न मालूम इस भोग पदार्थ की प्राप्ति हो या न हो लेकिन आत्म तत्व की अनुभवता में बिलकुल संशय नही है। सतपुरुष फरमाते हैं कि सादगी, सत्, सेवा, सत्संग और सत्समरण इन सब नियमों को पूर्ण दृढ़ता और विश्वास से पालन करोगे तो अवश्य आत्म तत्व का साक्षात्कार होगा। इसलिए निंसंशय अवस्था सत् मार्ग को अपनाने में है।

(4)सत्संग का चौथा चरण निर्माण स्वरूप का विचार है। निर्माणता तब प्राप्त होगी जब हम विचार करेंगे कि शरीर में हर पल हर समय परिर्वतन हो रहा है और नाश की ओर जा रहा है। काल इसे ग्रस रहा है। एक पल में राख की ढेरी हो जायेगा। ऐसे भाव आने से निर्मानता आयेगी। श्री सत्गुरूदेव परम कृपालता करते हुए फरमाते हैं प्रेमियों सत्संग में निर्वैर, निर्विवाद, निसंशय और निर्माण सरूप का विचार करो। ऐसा विचार करने से सत्संग का परम लाभ प्राप्त होगा।

श्री सत्गुररूदेव जी ने फरमाया कि समता का विचार ही असली सत्संग है। जो कि मन, इन्द्रियों की ममता को नाश करता है और आनन्द अवस्था को प्राप्त करने का जतन पैदा करता है। इस के बगैर सब नुमायश और जहालत है। जहाँ सत्वरूप का विचार हो उसको सत्संग कहते हैं।

जो हर एक के अन्तर की जानने वाला है और जिसका असली भेद कोई दूसरा नही जान सकता सर्वज्ञ सरूप परिपूर्ण है उस परमात्मा का विचार करना ही परम सत्संग है।

मान मध सब नासयो, चित्त पायो गरीबी भेख।
'मंगत' मिल सत्संग से, अबगत लखयो लेख।।

समता मार्ग में ईश्वर आज्ञा को दृढ़ करके धारण करना परम साधन है कर्म और निहकर्म भेद को जानना विशेष सत्संग है।

हर एक मजहब के रहुनमा की इज्जत करनी और उनके शुभ जीवन का आर्दश धारण करना और अपनी आत्मिक उन्नति करनी-यह ही समता का सत्संग है।

हजारों वर्ष की तपस्या इतना फल नहीं देती जितना की दो घडी सत्संग से लाभ होता है। सब भेद का विचार समझ आ जाता है। मूर्ख आदमी भी गुणवन्त हो जाता है। सत्संग ही तीर्थ है। सत्संग ही सब एश्वर्य की प्राप्ति का कारण है। सत्संग ही जीव के कल्यान का रास्ता दिखाता है। वह मानुष नहीं बल्कि पशु से भी बदतर है जो सत्संग से प्रेम नहीं रखता। दुनियाँ में जितने विखाद प्रगट होते हैं यह सत्संग के न होने से, हर एक आदमी अपना कल्याण का रास्ता भूल कर वैर बदी में आ जाता है।

एक पलक सत्संग फल आपार।
मुनि विशिष्ट यूँ करें पुकार।।
गुरु पीर अचारज होये।
मिल सत्संग तिमर सब खोये।।
प्रभ का नियम एह ही परधान।
साची संगत करे कल्याण।।

साची संगत प्रभ रूप है,
नित प्रभ का करे विचार|
'मगत' संगत दरस से,
नित हूँ नित बलिहार।।

ज्ञानयोग

धर्म की आवश्यकता

मानव जाति के भाग निर्माण में जितनी शक्तियों ने योगदान दिया है और दे रही हैं, उन सब में धर्म के रूप में प्रगट होने वाली शक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण कोई नहीं है। सभी सामाजिक संगठनों के मूल में कहीं न कहीं यही अद्भुत शक्ति काम करती रही है, तथा अब तक मानवता की विविध इकाईयों को संगठित करने वाली सर्वश्रेष्ठ प्रेरणा इसी शक्ति से प्राप्त हुई है। हम सभी जानते हैं कि धार्मिक एकता का सम्बन्ध प्रायः जातिगत, जलवायुगत तथा वंशानुगत एकता के सम्बन्धों से भी दृढतर सिद्ध होता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि एक ईश्वर को पूजनेवाले तथा एक धर्म में विश्वास करने वाले लोग जिस दृढ़ता और शक्ति से एक दूसरे का साथ देते हैं, यह एक ही वंश के लोगों की बात ही क्या, भाई-भाई में भी देखने को नहीं मिलता। धर्म प्रादुर्भाव को समझने के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं। अब तक हमें जितने प्राचीन धर्मो का ज्ञान है वे सब एक यह दावा करते हैं कि वे सभी अलौकिक हैं, मानो उनका उद्भव मानव मस्तिष्क से नहीं बल्कि उस श्रोत से हुआ है, जो उसके बाहर है।

आधुनिक विद्वान दो सिद्धान्तों के बारे में कुछ अंश तक सहमत हैं। एक है धर्म का आत्मामूलक सिद्धान्त और दूसरा असीम की धारणा का विकासमूलक सिद्धान्त। पहले सिद्धन्ति के अनुसार पूर्वजों की पूजा से ही धार्मिक भावना का विकास हुआ, दूसरे के अनुसार प्राकृतिक शक्तियों को वैयक्तिक स्वरूप देने से धर्म का प्रारम्भ हुआ। मनुष्य अपने दिवंगत सम्बन्धियों की स्मृति सजीव रखना चाहता है, और सोचता है कि यद्यपि उनके शरीर नष्ट हो . चुके, फिर भी वे जीवित हैं। इसी विश्वास पर वह उनके लिए खाद्य पदार्थ रखना तथा एक अर्थ में उनकी पूजा करना चाहता है। मनुष्य की इसी भावना से धर्म का विकास हुआ।

मिस्र, बेबिलोन, चीन तथा अमेरिका आदि के प्राचीन धर्मो के अध्ययन से ऐसे स्पष्ट चिह्नों का पता चलता है, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि पितृ पूजा से ही धर्म का आविर्भाव हुआ है। प्राचीन मिस्रवादियों की आत्मा-सम्बन्धी धारणा द्वित्वमूलक थी। उनका विश्वास था कि प्रत्येक मानव-शरीर के भीतर एक और जीव रहता है जो शरीर के ही समरूप होता है और मनुष्य के मर जाने पर भी उसका यह प्रतिरूप शरीर जीवित रहता है। किन्तु यह प्रतिरूप शरीर तभी तक जीवित रहता है, जब तक मृत शरीर सुरक्षित रहता है। इसी कारण से हम मिस्रवासियों में मृत शरीर को सुरक्षित रखने की प्रथा पाते हैं और इसी के लिए उन्होंने विशाल पिरामिडों का निर्माण किया, जिसमें मृत शरीर को किसी तरह की क्षति पहुँची, जो उस प्रतिरूप शरीर को ठीक वैसी ही क्षति पहुँचेगी। यह स्पष्टतः पितृ पूजा है। बेबिलोन के प्राचीन निवासियों में भी प्रतिरूप शरीर की ऐसी ही धारणा देखने को मिलती है, यद्यपि वे कुछ अंश में इससे भिन्न है। वे मानते हैं प्रतिरूप शरीर में स्नेह

का भाव नहीं रह जाता। उसकी प्रेतात्मा भोजन और पेय तथा अन्य सहायताओं के लिए जीवित लोगों को आतंकित करती है। अपने बच्चों तथा पत्नी तक के लिए उसमें कोई प्रेम नहीं रहता। प्राचीन हिन्दुओं में भी इस पितृ पूजा के उदाहरण देखने को मिलते है। चीन वालों के सम्बन्ध में भी ऐसा कहा जा सकता है कि उनके धर्म का आधार पितृ पूजा ही है और यह अब भी समस्त देश के कोने-कोने में परिव्याप्त है। वस्तुत: चीन में यदि कोई धर्म प्रचलित माना जा सकता है, तो वह केवल यही है। इस तरह ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म को पितृ पूजा से विकसित माननेवालों का आधार काफी सुदृढ़ है।

किन्तु कुछ ऐसे भी विद्वान हैं। जो प्राचीन आर्य-साहित्य के आधार पर सिद्ध करते हैं कि धर्म का आविर्भाव प्रकृति की पूजा से हुआ। यद्यपि भारत में पितृ पूजा के उदाहरण सर्वत्र ही देखने को मिलते हैं, तथापि प्राचीन ग्रन्थों में इसकी किंचित चर्चा भी नहीं मिलती। आर्य जाति के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद संहिता में इसका कोई उल्लेख नहीं है। आधुनिक विद्वान उसमें प्रकृति-पूजा के ही चिह्न पाते हैं। जो प्रस्तुत दृश्य के परे है, उसकी एक झाँकी पाने के लिए मानव-मन आकुल प्रतीत होता है। उषा, सन्ध्या, चक्रवात, प्रकृति की विशाल और विराट शक्तियाँ, उसका सौन्दर्य-इन सबने मानवमन के ऊपर ऐसा प्रभाव डाला कि वह इस सब के परे जाने की और उनको समझ सकने की आकांक्षा करने लगा। इस प्रयास में मनुष्य ने इन दृश्यों में आत्मा तथा शरीर की प्रतिष्ठा की. उसने उनमें वैयक्तिक गुणों का आरोपण करना शुरू किया, जो कभी सुन्दर और कभी इन्द्रियातीत होते थे। उनको समझने के हर प्रयास में उन्हें व्यक्तिरूप दिया गया, या नहीं दिया गया, किन्तु उनका अन्त उनको अमूर्त कर देने में ही हुआ। ठीक ऐसी ही बात प्राचीन यूनानियों के सम्बन्ध में भी हुई, उनके तो सम्पूर्ण पुराणोपाख्यान अमूर्त प्रकृति-पूजा की है और ऐसा ही प्राचीन जर्मनी तथा स्कैन्डिनेविया के निवासियों एवं शेष सभी आर्य जातियों के बारे में भी कहा जा सकता है। इस तरह प्रकृति की शक्तियों का मानवीकरण करने में धर्म का आदि स्रोत मानने वालों का भी पक्ष काफी प्रबल हो जाता है।

यद्यपि वे दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी लगते हैं, किन्तु उनका समन्वय एक तीसरे आधार पर किया जा सकता है, जो मेरी समझ में धर्म का वास्तविक बीज है और जिसे मैं- इन्द्रियों की सीमा का अतिक्रमण करने के लिए संघर्ष मानता हूँ। एक ओर मनुष्य अपने पितरों का आत्माओं की खोज करता है, मृतकों की प्रेतात्माओं को ढूँढता है, अर्थात् शरीर के विनष्ट हो जाने पर भी वह जानना चाहता है कि उसके बाद क्या होता है ? दूसरी ओर मनुष्य प्रकृति की विशाल दृश्यावली के पीछे काम करने वाली शक्ति को समझना चाहता है। इन दोनों ही स्थितियों में इतना तो निश्चित है कि मनुष्य इन्द्रियों की सीमा के बाहर जाना चाहता है । वह इन्द्रियों से ही सन्तुष्ट नहीं है, वह इनसे परे भी जाना चाहता है। इस व्याख्या को रहस्यात्मक रूप देने की आवश्यकता नहीं। मुझे तो यह बिलकुल स्वाभाविक लगता है कि धर्म की पहली झाँकी स्वप्न में मिली होगी। मनुष्य अमरता की कल्पना स्वप्न के आधार पर कर सकता है। कैसी अद्भुत है स्वप्न की व्यवस्था! हम जानते हैं कि बच्चे तथा कोर मस्तिष्क वाले लोग स्वप्न और जाग्रत स्थिति में कोई

भेद नहीं कर पाते। उनके लिए साधारण तर्क
के रूप में इससे अधिक और क्या स्वाभाविक
हो सकता है कि स्वप्नावस्था में भी, जब शरीर
प्रायः मृत सा हो जाता है तब भी मन के सारे
'जटिल क्रियाकलाप चलते रहते हैं। अतः इसमें
क्या आश्चर्य, यदि मनुष्य हठात् यह निष्कर्ष
निकाल ले कि इस शरीर के विनष्ट हो जाने
पर इसकी क्रियाएँ जारी रहेंगी ? मेरे विचार
से अलौकिकता की इससे अधिक स्वाभाविक
व्याख्या और कोई नहीं हो सकती, और स्वप्न
पर आधारित इस धारणा को क्रमशः विकसित
करता हुआ मनुष्य ऊँचे से ऊँचे विचारों तक
पहुँच सका होगा। हाँ, यह भी अवश्य ही सत्य
है कि समय पाकर अधिकांश लोगों ने अनुभव
किया कि ये स्पप्न हमारी जागृतावस्था में सत्य
सिद्ध नहीं होते और स्वप्नावस्था में मनुष्य का
कोई नया अस्तित्व नहीं हो जाता, बल्कि यह
जाग्रतावस्था के अनुभवों का ही स्मरण करता है।
किन्तु तब तक इसमें अन्वेषण आरम्भ हो
गया था और अन्वेषण की धारा अन्तर्मुखी हो
गयी और मनुष्य ने अपने अन्दर अधिक गम्भीरता
से मन की विभिन्न अवस्थाओं का अन्वेषण
करते करते जाग्रतावस्था और स्वप्नावस्था से
भी परे कई उच्च अवस्थाओं का आविष्कार
किया संसार के सभी संगठित धर्मों में इन
अवस्थाओं की चर्चा परमानन्द या अन्त स्फुरण
के रूप में मिलती है सभी संगठित धर्मों में ऐसा
माना जाता है कि उनके संस्थापक पैगम्बरों
एवं सन्देशवाहकों ने मन की इन अवस्थाओं
में प्रवेश किया था, और इनमें उन्हें एक ऐसी
नवीन तथ्यमाला का साक्षात्कार हुआ था, जो
आध्यात्मिक जगत से सम्बद्ध है उन अवस्थाओं
में उन महापुरूषों को जो अनुभव हुए, वे हमारे
जाग्रतवस्था के अनुभवों से कहीं अधिक ठोस
साबित हुए उदाहरण के लिए तुम ब्राह्मण धर्म
को लो ऐसा कहा जाता है कि वेद ऋषियों
द्वारा रचित हैं ये ऋषि ऐसे सन्त थे जिन्हें
विशिष्ट तथ्यों का अनुभव हुआ संस्कृत शब्द
ऋषि की ठीक परिभाषा है मन्त्रों का दृष्टा ये
यदों की रिचाओं के भाव है इन ऋषियों ने यह
घोषित किया कि उन्होंने कुछ विशिष्ट तथ्यो
का साक्षात्कार अनुभव किया है अगर अनुभव
शब्द को इन्द्रियातीत विषय में प्रयोग करना
ठीक है तो और उन्होने अपने अनुभवों को
लिपिबद्ध किया हम देखते है कि यहूदियों और
ईसाइयों में भी इसी सत्य का उदघोष हुआ था
दक्षिण सम्प्रदाय के प्रतिनिधि बौद्धों का
जहाँ तक प्रश्न है, इस सिद्धान्त को अपवाद
रूप में लिया जा सकता है। यह पूछा जा
सकता है कि यदि बौद्ध लोग ईश्वर या आत्मा
में विश्वास नहीं करते, तो यह कैसे माना जा
सकता है कि उनका धर्म भी किसी अतीन्द्रिय
स्तर पर आधारित है ? इसका उत्तर यह है कि
बौद्ध लोग भी एक शाश्वत नैतिक नियम-धर्म
में विश्वास करते हैं और उस धर्म का ज्ञान
सामान्य तर्कों के आधार पर नहीं हुआ था, वरन्
बुद्ध ने अतीन्द्रियावस्था में इसका आविष्कार
किया था। तुम लोगों में से उन्होंने बुद्ध के
जीवन-चरित्र का अध्ययन किया है, चाहे वह
एशिया की ज्योति (The light of Asia) जैसी
ललित कविता के माध्यम से संक्षिप्त रूप में
ही क्यों न हो, उन्हें याद होगा कि बुद्ध को
अश्वत्थ वृक्ष के तले बैठा हुआ दिखाया गया है
जहाँ उन्हें निर्विकल्पावस्था की प्राप्ति हुई है।
उनके सारे उपदेश इस अवस्था से ही प्रादुर्भूत
हुए न कि बौद्धिक चिन्तन से।

आगे का अगले अंक मे…….

सत उपदेश अमृत

जन्म से लेकर भरने तक जीव कुछ न कुछ करता ही रहता है। सब शरीरधारी जिया जन्त कर्म चक्कर में रात दिन लगे रहकर शारिरीक यात्रा का समय व्यतीत कर जाते हैं और जीवों की छोड़ो सिर्फ इन्सानी जामे का ही विचार करो। किस कदर यह कर्म यन्त्र में ग्रसा हुआ है। इसे कोई होश नहीं कि यह शरीर क्या है? इस में बोल क्या चीज रही है ? पैदा होकर आखिर खत्म हो जाता है। मगर इसे पता नहीं लगता कि आना किधर से हुआ और किधर जा रहा है। खाने पीने, देखने, सुनने, चखने ओर अनेक तरह के काम करने की इसे जन्म से ही सोझी है। इसे यह भी पता है कि यह कर्म नेक है, यह कर्म बद है नेकी-बढ़ी का सबका इसे इल्म है।

करम चक्कर संसार है, करम ही बन्ध सरूप।
भगत मिले तब शान्ती, जब पाये निज रूप ।।

मनुष्य का जन्म बड़ा श्रेष्ट है। इस जामें के जरिये उस परम तत् अबिनाशी की प्राप्ती कर सकता है। मगर नित ही शरीर के परायण हो कर ऐसा अज्ञानता में गर्क हो गया है कि इसे अपने पराये का भेद पता नहीं लगता। लोभ, मोह वश होकर अनेक तरह के कुर्कम भी कर जाता है। जीव कई तरह के शरीर धारण क्यों न करे, हर जगह, हर समय हर शरीर में इसे सुख भी और दुःख भी मिलते रहते हैं। अपना-अपना प्रारब्ध कर्म हर शरीरधारी को ऊँचा-नीचा ले जाता है। ईश्वर ने विचार के वास्ते बुद्धि दे रखी है। जीव सांसारिक भोग पदार्थों के सुखों को हासिल करने के वास्ते ही सब कुछ अपना न्योछावर कर देते हैं। उनको ही प्राप्त करना बड़ा काम समझ रखा है। यह ही उनकी परम अज्ञानता है। जीवन यात्रा का आधा हिस्सा तो सोने में ही खत्म कर देता है।

भरम अगन संसार है, सभी जीव भरमाये।
"मगत दुःख को देख के, फिर उठ दुःख में धाये।।

जब शरीर को बुढ़ापा आकर घेरता है, तब कुछ करने धरने की शक्ति नही रहती। रातें सोचने में गुजर जाती है। इस कर्म चक्कर में जकड़ा हुआ जीव दुःख पर दुःख सहता हुआ हर समय जीवन बेजारी में गुजारने लगता है। पिछले सुखों को याद करके कल्पने लग जाता है और आगे इस से कुछ करने को बनता नहीं मौत सामने नजर आने लगती है। जो जीवन में माल धन इकट्ठा किया था उसे पुत्र कलत्र बरबाद करने लग जाते हैं। आप तो जिन्दगी में न स्वाद से कुछ खाया न पहना न पुण्य-दान किया न सेवा में खर्च कर सका। उस समय दूसरों को ऐसा करते देख कर मन नही मन कुढ़ता जाता है। मगर कुछ कहने पर भी उस की कोई नहीं सुनता। मोह ममता के फेर में पड़ कर सारी उमर कोई अच्छा काम न कर सका बल्कि केवल धन इकट्ठा करना, परिवार का फैलाव कर लेना, जायदाद वगैरा खड़ी करता रहा। यह समझ ही नहीं आई कि यह असली रास नहीं है।

सुख को खोजत खोजते, जीव जूनी बहु पाये।
'मंगल' माया मोह घर, निज आतम सुख विसराये ।।

यदि झूट, कपट, छल, फरेब द्वारा कूड को सत करके इकट्ठा कर भी लिया, तो क्या

हुआ यह समझ में नही आया कि यह सब
सम्पदा इसी जगह रह जाने वाली है उसे यह
पता ही नहीं लगा कि जीव की असली रास
नेक अमाली है। जिन्दगी में ही कोई अच्छा
कर्म न बन सका किस तरह अगले आने वाले
समय में सुख को अनुभव कर सकेगा। कहते
है-

"बीजे पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाये"

आमतौर पर हिन्दुस्तान में, खासतौर पर हिन्दु
जाति के अन्दर, यह विश्वास सा बना हुआ है
कि मरने के बाद बेटे, पोते हमारी कल्याण कर
देंगे, जबकि जीवन में ही तेरा विस्तरा, चारपाई
बाहर के बरामदे में कर देते हैं, कहते हैं
कि बूढ़े की मत मारी गयी है, इसे अभी भी
खाने का लालच बना हुआ है। जिनके वास्ते
बड़े चाव चौंप से बड़े-बड़े आराम व सुख के
सामान इकट्ठे करता था, वह दाल रोटी देने
में भी लाचारी समझ रहे हैं।

जरा अवस्था प्राप्ती, जीव घोर दुःख पाये।
'मगत' एथे थाँ नहीं, आगे की सुध नाये ॥

यह ससांर है, कोई बेटा, पौता, द्धौता सहारा
नहीं बन सकता। जब मरता है पीछे घोड़ों पर
चढ़ कर चौरियाँ झुलाते हैं। बड़े-बड़े आला
कपड़े मुर्दे पर डाल कर बाजार से गुजारते हैं
ताकि दुनिया वाले वाह-वाह करें। जिन्दगी में
तो उसे पूछा तक न मर गया बाजे गाजे शुरू
कर दिये। यह बातें आम रोजाना देखने में आ
रही हैं। जीवन में ही जो कुछ किया, जप, तप,
सेवा, सिमरण, पुण्य, दान अच्छे से अच्छा कर्म
ही सहायता करने वाले हैं। जो यह समझते हैं,
चार रोजा यह शारीरिक यात्रा है, इसमें कुछ
भला कर्म करने से ही कलयाण हो सकती है,
वह बाहोश बुद्धि है, जो ठीक समझ कर ठीक
ही चलते हैं।

सतपुरुषों की सीख से मन तन भया निहाल।
मगत बंधन सब नासिया, घर परसयो दीनदयाल ॥

कई जीव ऐसे भी संसार में होते हैं जो
समझते ठीक है, मगर करते वक्त लोभ मोह
के वश होकर गलत कर्म कर जाते हैं। स्वतंत्र
बुद्धि वाला पुरूष वह ही है जिसने ठौक बजा
कर सत को समझा है और चलते समय इस
से भी ज्यादा होशमंदी से सत् में दृढ़ होने का
यत्न करता है। वह ही बड़ी अकल वाला मनुष्य
है। जब तक अविनाशी तत्व में पूर्ण निश्चय
नहीं बैठ जाता, तब तक कैसे आगे कदम चल
सकता है। दीनदयाल ही सब जीवों को निर्मल
बुद्धि बख्शें ताकि अपने भले बुरे का अच्छी
तरह से विचार कर सकें। जितना समय शरीर
ने अब तक भोगों को भोगा है वह तो समझो
काल के मुख में चला ही गया है, आगे का क्या
भरोसा है। इस वास्ते इस जीवन में ही मालिक
की याद कर के सफलता प्राप्त करें। मानुष
जन्म का परम लाभ इसी में है।

समा गया जो औध का, सो ही काल गयो खाये।
'मगत भरमन त्याग के, नित सिमर लीजो प्रम राये ॥
निर्वाध रूप सत शब्द हैजो घट घट रह्या व्याप।
'मगत जिस जन सोधिया, नहीं परसे दुख सन्ताप ॥

बुढ़ापा तब भारी पड़ता है जब जवानी में
उसके आगमन की पूर्व तैयारी नहीं की गई
होती। अप्रत्याशित आ धमकने वाले मेहमान
से परेशानी हो सकती है, पर पूर्व सूचना
मिलने पर प्रतीक्षा और तैयारी का अवसर
देकर जो मेहमान आता है, उससे प्रसन्नता
ही होती है। बुढ़ापे को सम्मानित अथ्यागत
माना जाए और उसके सत्कार का पूर्ण प्रबन्ध
रखा जाए तो दुःख लगने जैसी कोई बात
होती नहीं।

मुक्ति तथा उसके साधनों की दुर्लभता

प्राणियों के लिये सर्वप्रथम तो मनुष्य देह प्राप्त करना ही अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें भी पुरुष शरीर, उसमें भी ब्राह्मणत्व के संस्कार, उसमें भी वैदिक धर्म में प्रवृति, उसमें भी शास्त्र के आत्म-अनात्म विचार रूपी तात्पर्य का सम्यक ज्ञान, उसमें भी बहा में निरन्तर स्थिति-ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। इस प्रकार सैकड़ों करोड़ों जन्मों के सत्कर्म रूपी पुण्य के बिना मुक्ति नहीं मिलती। मनुष्य शरीर में जन्म, (आवागवन से) मोक्ष प्राप्ति की इच्छा (मुमक्षा) और महापुरूषों का संग - ये तीनां चीजें अत्यन्त दुर्लभ हैं और ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती हैं। किसी प्रकार ऐसा दुर्लभ मानव-जन्म और उसमें भी पुरुष शरीर तथा वेदान्त तत्व पर विचार करने की क्षमता प्राप्त करके भी, जो मूर्ख अपनी मुक्ति के लिये प्रयास नहीं करता, वह (क्षणिक तथा) मिथ्या वस्तुओं को ग्रहण करके अपना विनाश करने के कारण सचमुच का आत्महन्ता है।

जो व्यक्ति ऐसा दुर्लभ मानव शरीर और फिर पुरुष देह भी पा करके अपने परम स्वर्थ-लाभ (मुक्ति) की चेष्टा में आलस्य करता है, उससे बड़ा मूर्ख इस दुनिया में दूसरा कौन होगा ?

चाहे कोई कितने भी शास्त्र के उदारहण देता रहे चाहे कोई कितना ही देवताओं की प्रसन्नता के लिये योग-यज्ञ करता रहे, चाहे कोई कितने ही शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करता रहे; परन्तु जीव का आत्मा (ब्रह्म) के साथ एकत्व की अनुभूति हुए बिना बह्मा के सौ कल्पों अर्थात करोड़ों वर्षो में भी मुक्ति नहीं हो सकती।

वेदों की निश्चित घोषणा है कि धन के द्वारा अमृतत्व पाने की कोई आशा नहीं है। (न कर्मणा न प्रजया घनेन त्यागने के अमृतत्वमानशु- "न कर्म के द्वारा, न पुत्र के द्वारा और न धन के द्वारा, अपितु केवल त्याग के द्वारा ही कुछ लोगों ने अमृतत्व प्राप्त किया है।") इसस यह स्पष्ट हो जाता है कि (सकाम कर्म मुक्ति का कारण नहीं हो सकता।

अतः विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि वह बाह्य जगत् के विषयों से सुख पाने की इच्छा को त्याग कर, किसी सज्जन तथा उदार गुरू के पास जाये और उनके द्वारा उपदेश के रूप में बतायी गयी साधना में मन को लगाकर, अपनी मुक्ति के लिये प्रयास करे।

आत्म दर्शन में निष्ठा के द्वारा योगारूढ़ की अवस्था को प्राप्त करके व्यक्ति को संसार सागर में डूबी हुई अपनी आत्मा का स्वयं ही उद्धार करना चाहिये।

ऐसे धीर तथा विद्वान् साधक को (वेदान्त में कथित आत्मा के श्रवण, मनन आदि का) अभ्यास आरम्भ करने के बाद सभी (सकाम) कर्मों को त्यागकर, जन्म-मृत्यु रूपी भव-बन्धन से मुक्त होने के लिये चेष्टा करनी चाहिये।

निष्काम कर्म के द्वारा आत्म-स्वरूप की प्राप्ति नहीं, बल्कि चित्त की शुद्धि मात्र होती है; आत्मानुभूति तो करोड़ों कर्मों के द्वारा भी नहीं, बल्कि केवल विचार के द्वारा होती है।

जिस रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होने के कारण यह महान् भय तथा दुःख उत्पन हुआ है, उसके वास्तविक सवरूप की धारणा उचित विचार के द्वारा ही हो सकती है।

तीर्थों में स्नान, दान या सैकड़ों प्राणायामक करने से भी नहीं, अपितु गुरु की हित कर युक्तियों पर विचार करने से ही बह्मतत्व की अनुभूति देखने में आती है।

साधन चतुष्टय

साधना में फलसिद्धि के लिये उत्तम अधिकारी होने की विशेष आवश्यकता है। इस सिद्धि में स्थान, काल आदि उपाय उसके सहायक मात्र हैं। अतः जिज्ञासु साधक को चाहिये कि वह उत्तम ब्रह्मवेता दयासिन्धु गुरु की शरण ले कर आत्म-वस्तु पर विचार करता रहे।

जो मेघावी . विद्वान् तथा शास्त्रों के पक्ष का मण्डन और उसके विपक्ष का खण्डन करने में कुशल है . ऐसे लक्षणों वाला व्यक्ति ही आत्म विद्या का अधिकारी है। जो आत्मा-अनात्मा में विवेक कर सकता है, जो वैराग्यवान् है, जो शम आदि छह सम्पत्तियों से युक्त है, ऐसे मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष की इच्छा रखने वाले व्यक्ति में ही ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करने की योग्यता मानी गयी है। एस ब्रह्मविद्या की सिद्धि में मनीषियों ने चार साधनाओं की आवश्यकता बतायी है। इनके होने से ही ब्रह्म-वस्तु में निष्ठा सघती है. इनके अभाव में नही सघती ।

नित्य- अनितय वस्तु के बीच विवेक को पहला साधन माना जाता है। इस के बाद इहलोक तथा परलोक में भोगे जाने वाले कर्म फलों के प्रति वैराग्य की गणना होती है। तीसरा साधन है शम आदि षट् सम्पतियाँ और चौथा है मुमुक्षा अर्थात मुक्त होने की इच्छा। यह स्पष्ट है। -

ब्रह्म ही सत्य वस्तु है और जगत् मिथ्या- ऐसा दृढ निश्चय ही नित्यानित्य-वस्तु-विवेक कहलाता है।

इस लोक के देहादि भोगों से ले कर ब्रह्म के लोक तक के समस्त अनित्य भोग वस्तुओं के देखने सुनने आदि की कामना को त्याग करने की इच्छा वैराग्य कहते हैं।

षट् सम्पतियाँ

प्रतिक्षण विषयों का दोष देखते हुए (विचार के द रा) उन्हें त्याग कर निरन्तर अपने लक्ष्य (ब्रह्म) से मन लगाये रखने को शम' कहते हैं। यह छह सम्पत्तियों में प्रथम है)।

पाँचो ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँचों कर्मेन्द्रियों को (संसार के) विषयों में से खींचकर उनके अपने अपने गोलकों में स्थापित करने को 'दम' (आत्मसंयम) कहते है। मन की वृतियों को बाह्य वस्तुओं से प्रभावित न होने देना उत्तम उपरति (विषयों से निवृत्ति) माना जाता है।

सभी प्रकार के दुःखों को उन्हें दूर करने की चेष्टा और चिन्ता-विलाप आदि किये बिना ही सहन करना तितिक्षा कहलाती है।

शास्त्रों तथा गुरु के उपदेश अक्षरशः सत्य है ऐसी निश्चयातिमक बुद्धि को सन्तगण 'श्रद्धा' कहते हैं इसी के द्वारा वस्तु' अर्थात आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

अपनी बुद्धि को केवल वेदान्त की चर्चा में लगाकर तृप्ति पाना नहीं, अपितु उसे सर्वदा सर्व प्रकार से शुद्ध ब्रह्म में स्थापित किये रखना ही 'समाधान' कहलाता है।

जीव के अहंकार से लेकर स्थूल शरीर तक के सारे बन्धन अज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा इनसे मुक्त होने की तीव्र इच्छा को 'मुमुक्षा' कहते हैं।

मुमुक्षा यदि मन्द या मध्यम प्रकार की हो, तो भी वैराग्य तथा शमदम आदि छह सम्पतियों और गुरु कृपा की सहायता से वृद्धि पाकर मोक्षफल प्राप्त कराती है।

परन्तु जिस साधक में वैराग्य तथा मुमुक्षा की तीव्रता विद्यमान रहती है, उसी में शम आदि छह सम्पतियाँ सार्थक तथा मोक्ष फल प्रदान करने वाली होती हैं।

जिस साधक के चित्त में वैराग्य तथा मुमुक्षा- इन दोनों की कमी दिखाई पड़ती है, उसमें मरुभूमि में मरीचिका के समान शम आदि सम्पतियों का आभास मात्र होता है। अर्थात वैराग्य तथा मुक्षा के बिना ब्राबध की आकांक्षा दिवा स्वपन के समान निरर्थक है।

निष्काम सेवा

साधारणतया सांसारिक प्राणी स्वार्थ वश अपने निकट के सम्बन्धियों, परिवारिक प्राणियों और अन्य प्रियजनों की सेवा में उलझे रहते हैं। उनका समस्त जीवन अन्तिम पड़ाव की और चला जाता है परन्तु निष्काम सेवा करने की सोच उनके मस्तिष्क में बैठ नहीं पाती। सत्पुरूष ही जिज्ञासु को निष्काम सेवा का महत्व बता कर उसे मानव सेवा की औ र अग्रसर करके उसे अपने स्वरूप का ज्ञान कराते हैं जिसे अध्यात्म दृष्टि से आत्म ज्ञान कहते हैं। जिस जीव को आत्म ज्ञान की अनुभूति है वह ही सच्चा ज्ञानी है। ज्ञानी के लिए और कुछ जानना बाकि नहीं रहता। पूर्ण रूप से अपने सरूप को जानना ही मुक्ति है। यह ही शाश्वत् सुख परम आनन्द एवं शाँति है।

जीव रूपी तख्ते को स्वांस रूपी आरी नित् प्रति काट रही है और वह दिन दूर नहीं जब यह शरीर नहीं रहेगा। अतः लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक-एक क्षण मूल्यवान है। जीवन का लक्ष्य ईश्वर में विलय हो जाना है। उस ईश्वर का सरूप हर एक प्राणी में मौजूद है। अतः मानुष जीवन का लक्ष्य हर एक प्राणी मात्र की सेवा करना है चाहे वह किसी भी योनी में विचर रहा है। सेवा के बिना कल्याणकारी जीवन बन नहीं सकता। निष्काम सेवा ही सुन्दर जीवन का निर्माण करती है। निष्काम सेवा का क्रियात्मिक सरूप ही आत्म ज्ञान है, यह ही मुक्ति का दाता है। महापुरूषों के शब्दों में निष्काम सेवा ही मुक्ति का द्वार है। प्राणियों की निष्काम सेवा ही ईश्वर की सच्ची उपासना है।

प्रेम को जीवन का अभिन्न अंग बनाये प्रेम का मानुष जीवन से अटूट सम्बन्ध है। प्रेम के बिना जीवन नीरस व मृत्यु के समान है और जीवन के बिना प्रेम जड़ रूप है और जीवन में जड़ता भी मृत्यु का सरूप है। वास्तव में प्रेम से ही सच्चा जीवन है और सच्चा जीवन ही पूर्ण प्रेम है। क्योंकि यह दोनों ही एक परम सत्ता आत्मा के द्योतक है। जीवन में प्रेम का आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन में प्रेम का संकुचित दृष्टिकोण अपनाने से जीवन का कल्याणकारी रूप प्रायः लुप्त हो जाता है। क्योंकि मानव का कल्याणकारी जीवन प्रेम का ही एक स्वरूप है। श्री सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज ने अमर वाणी में सब जीवों से प्रेम की प्रेरणा देते हुए फरमाया है कि-

साचा प्रेम तिस अन्तर जागे।
सत साधु की सेवा लागे॥
सत असत का निरनय पाये।
प्रेम सरूप तब अन्तर आए॥
धन्न पुरष जिस प्रेम मन आया।
विखे त्याग हर सिमरन पाया॥
प्रेम सरूप आप गोपाल।
जाँ घट प्रेम ताँ आप दयाल॥
सकल ज्ञान की सार पहचान।
साचा प्रेम आवे भगवान॥
प्रेमी बाँध सकल संसार।
परगट करके सत प्रेम विचार॥

जिसघट उपजाप्रेम प्रम , तिसका अचरज खेल
'मंगल प्रेमी सो आया, घोवन जग की मैल।।

भगवान श्री कृष्ण जी ने गीता में घोषणा की है "मैं सब भूतों में हूँ और सब मूत मेरे में ही विराजमान हैं।" इस का दिग्दर्शन भगवान श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को विराट रूप दिखा कर कराया था। भगवान श्री कृष्ण जी एक महान योगी थे, उन्हें सज्जन और दुर्जन दोनों ही प्रिय थे। मित्र और शत्रु के प्रति भी उनकी समदृष्टि थी। योगी के लिए समदृष्टि होना परम आवश्क है। मानव प्रेम के बिना समदृष्टि नहीं बन सकती। जीवन प्रेम के बिना फीका है, इसमें आनन्द का अनुभव कदापि नहीं हो सकता। परम आनन्द ही शान्ति है।

सार निर्णय यह है कि मानव को कल्याण कारी शान्तमय जीवन प्राप्त करने के लिए प्राणी मात्र से प्रेम करना ही होगा। जीवन की स्वतन्त्रता, इस की मुक्त अवस्था प्रेम में ही निहित है। प्रेम के बिना जीवन नीरस और परतन्त्र है। प्रभु सत्चित्त आनन्द है और उस की कसौटी भी प्रेम ही है। मानव जीवन की उत्पति प्रेम का ही जवलन्त स्वरूप है। दाम्पत्य जीवन प्रेम का ही सार है। मनुष्य जीवन अनमोल है और प्रेम ही इसमें चेतन शक्ति है। यदि प्रेम को जीवन में से निकाल दे तो जड़ता का प्रादुभाव होता है। संक्षेप में प्रेम ही जीवन है प्रेममय जीवन ही शान्ति दायक है। मानव चोला इसीलिये बड़ा श्रेष्ट और समस्त योनियों में उत्तम माना जाता है, क्योंकि इस चोले को धारण करके ही और केवल इसी के माध्यम से जीव ईश्वर प्राप्ति करने में समर्थ हो सकता है। अतः मानव शरीर की उपयोगिता इसी में है कि हम जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करें।

एक बार काशी का एक पड़ित एक स्वामी जी के पास आया और बहस करने के इरादे से उसने पूछा-

महाराज जी ईश्वर का दर्जा बढ़ा है या ईश्वर के सच्चे भक्त का ?

आप ने मुस्कराकर उत्तर दिया-

हरि से मत तू हेत क र. हरिजन से कर हेत।
माल मुल्क हरि देत है, हरिजन हरि को लेख ||

पंडित शर्मिंदा हो गया। वास्तव में मानव शरीर ही उस की मुक्ति की नौका है और मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है।

मन की एकाग्रता

मन की एकाग्रता तब होती है जब तमाम शारीरिक सुख दुःख प्रभु आज्ञा में समर्पण कर दिए जायें और होना न होना प्रभु आज्ञा में देखा जाये। अखण्ड वृति से बार-बार प्रभु नाम का ही चिन्तन करे . ऐसे दृढ अभ्यास से तमाम विरूद कामना का नाश होता है और अधिक प्रभु प्रेम को धारण करके बुद्धि अपने आप में अचल होती है और सत अखण्ड शब्द को अनुभव करती है . यह ही असली एकाग्रता है। अधिक वैराग तमाम संसार से और अधिक प्रेम परमेश्वर के ज्ञान सरूप में और अधिक श्रदा सतपुरुषों के वचनों पर जिसकी होती है और जो अभ्यास में पूर्ण दृढ़ता को धारण करता है वह ही सत्पुरूष तमाम वासना के अन्धकार से निर्मल होकर अपने सतसरूप में एकाग्रता को प्राप्त होता है।

दान का सिदान्त

पहले दर्जे का दान जो करके दान नहीं करता, गर्ज को मद्देनजर रख कर दान करता है यह निखिद दान है।

जो पब्लिक उन्नति की खातिर दान नहीं करताऔर देवी-देवताओं को खुश करने की खातिर लक्ष्मी सर्फ करता है यह भी निचले दर्जे का दान है।

जो नुमायश को मद्दे नजर रख कर दान करता है वह भी अदना दान है।

यथार्थ यह है कि फर्ज करके यथा शक्ति योग्य सेवा करनी सबसे बड़ा दान यह है-

(1) विद्या के प्रचार में खर्च।

(2) रोग निवृति की खातिर खर्च।

(3) देश और धर्म की जाग्रति की खातिर खर्च।

(4) श्रेष्ट आचार साधु और विद्वानों के जीवन की खातिर खर्च।

(5) गरीबों और यतीमों की उन्नति की खातिर खर्च

(6) सत्संग और समाज के एकत्र करने की खातिर खर्च।

(7) अन्न और वस्त्र का हर एक नादारद की खातिर खर्च।

(8) सरायें, तालाब, कुएं, बावलियों, सड़कें, पुल इनके तामिर करने का खर्च, सब दान उच्च कोटि का है। इससे बड़ी कल्याणता प्राप्त होती है।

दूसरे दर्जे का दान:- दूसरे दर्जे का दान अपने कुनबे की खातिर खर्च, अपनी गर्ज की खातिर राजा, हाकिम और भाटों की धन से सेवा करनी। देवी-देवताओं और तीर्थों के परसने का खर्च, निचले दर्जे का दान है। पूर्ण सिदान्त यह है कि जो गर्ज करके सेवा की जावे वह अदना है जो फर्ज करके सेवा की जावे वह आला है, थोड़ी मिकदार की, ख्वाहे बडी मिकदार की।

गर्ज वाली सेवा से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती . ख्वाहे कितनी ही कोशिश करें। फर्ज को जान कर जो सेवा करता है वह आत्म उन्नति को प्राप्त होता है धन, मन और तन यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनो जन्जीरों से छूटने के खातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है। सो उसी त्याग को दान कहते है। जो लागंज भाव को मददेनज र रख कर त्याग करता है वह इन कंदों से छूट जाता है। जो गर्ज करके त्याग करता है वह बार-बार इन जन्जीरों में कैद होता है।

धन का त्याग:- ईश्वर निमित्त और लोक-सेवा में जायज है। गर्व को त्याग कर जो दान किया जाये वह निजात को देने वाला है।

तन का त्याग:- पर उपकार कर्म और सच्ची ईश्वर परस्तिश में शरीर को सर्फ करना। देह-अभिमान से निजात मिलती है।

मन का त्याग:- तमाम वासनाओं को ईश्वर निमित्त त्याग करना होना और न होना उसकी आज्ञा में देखना, दृढ निश्चय से ईश्वर सिमरण करना। यह मन का त्याग और परम तप है। इस से निहकर्म रूप परम-आन्नद पार ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, जो असली मुकाम है।

यथार्थ निर्णय:- यथार्थ निर्णय यह है कि तन, धन और मन को निष्काम भाव से दूसरे के निमित्त जो सर्फ करता है वह भी परम दानी है और परम भक्त है। ऐसे निष्काम भाव और पर उपकार को साधन करते करते कर्म चक्कर से छूट कर निहकर्म सरुप में लीन हो जाता है। फिर सब वासना खत्म हो जाती है, पूर्ण ब्रह्म रुप हो जाता है। दान रुपी त्याग मार्ग को समझ कर हर घड़ी हर लमह इसके परायणहोना चाहिये और अपने जीवन का उद्धार करना चाहिये। यह ही समता मार्ग का निर्णय है।

वाणी (पूर्ण गुरू)

दुर्लभ समा विचार के, कीजो साची कार।
नित सेव हरिनाम को, मन में घर उपकार ।।
खिमा गरीबी धारिये, एक नाम से प्रीत |
नित सेवा कर साध की सुनिये ज्ञान पुनीत ।।
सब से नीचा हो रहो, साहब कर अरदास।
सतगुर के परसाद से, हुआ मन परगास ।।
कलह कल्पना सब मिटी, घट शब्द किया विचार |
उद्वत बैठत सेवया, जग का सरजनहार ।।
मोह ममता भरम सकल मिटा, सतनाम की लागी प्यास।
अनहद खेले गगन में, अन्तरमुख कर स्वास ।।
आठ पहर निज नाम में विरती धरें अडोल।
अगम नाद रस पींवदे, तज काया हिरस अती खोल ।।
पाँच विषे दमना करे, साचा शब्द कमाये।
इन्द्री जीत ब्रह्म तत्त जुगता, सो पूरा गुर कहलाये ।। -
चंचल मनुआँ त्याग के जापे नाम अगाध।
आतम तत्त परघट करे, सोगुर पूरा साध ।।
एक घड़ी ना विसरे, अखंड नाद मन ध्यान।
तन मन की इच्छया गई, सो साधु परवान ।।
जाँ बोलदे ताँ ब्रह्म तत्त, सत निरंजन देव।
सुन्न समाध नाम अखण्ड, करे सदा तिस सेव ।।
दास भाओ हिरदे धरे, गरब गरूर मिटाये।
प्रेम भगत प्रगट करें, सब बादमुबाद हराये ।।
सतपुरूषों की प्रीत नित, अधिक वैराग चित वास।
तन मन की इच्छया तजे, करे आतम विश्वास।।
सत नाम नित पींवदे, मन पवन की डोर।
एक धार मनुआँ भया, सुने शब्द घनघोर ।।
सिद्धन की ये साधना, निरतन पुरख प्यार।
काया अन्दर मेल लें, सत पुरख निरंकार।
ऐसी जाँ की साधना, निर्मल जाँ अहसास।
पूरा गुर सो जगत में, करे भरम का नास ।।
पाँच पचीस के भरम को, साधे उद्म धार।

जाए बसे सत धाम में, मिटे चौरासी खार॥
नित दयालू उदार चित, खिमावान, जाँ रीत।
दर्शन जाँ के करन से, उपजे ज्ञान परीत।।
प्रेम आहार है संत दा, भरम करम करे दूर।
ब्रह्म शब्द में रम रहे, उपजे अधिक सरूर॥
नेहचल मनुआँ इस्थिर बुद्धी, आतम परसे जोए।
पाँच तत्त विखया हरे, पूरा सतगुर सोए॥
ऐसे गुर को भेंटिये, सुनिये सत उपदेश|
जतन जतन से साधिये, अबगत पुरख अलेख||
निरद्वन्दी निर्मान मध, निरपख जाँ विचार|
तत्त ज्ञान पर बीन जो, कर तिस गुर जयकार॥
भाग बिना नहीं पाइये, ऐसे गुर की सेव।
तन मन दीजो तिस चरन पे, मिटे भरम और भेव॥
अमरत बचन तिस पुरष का, सब में प्रेम उपजाये।
मिटे भरम की फाँस सब, सार वस्त चित आये॥
महापुरष के दरश से, जनम जनम मल नास।
हरख मोह ममता मिटे, उपजे ज्ञान अबनास॥

क्या लीला सतपुरष की, कथ थाके सिद्ध अवतार।
'मंगत' ऐसा गुर मिले, तब पाइये सचयार॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

श्री मद्भगवत गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण गुरु का महत्व बताते हुए कहते हैं कि देव, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचार्य और अहिंसा आदि शारीरिक तप कहलाते हैं। जो मनुष्य को ज्ञान कराये और ब्रह्मा की और ले जाए वह गुरु कहलाता है। जो ब्रह्मा की प्राप्ती का साधन बतलाए और साथ ही उसका परमाण भी दे वह ही सच्चा गुरु है। गुरु गीता में तो गुरु को ब्रह्म, विष्णु और महेश के समान कहा गया है। गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही महेश है। यहाँ तक की गुरु ही साक्षात परब्रह्म है। ऐसे गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ। महाकवि तुलसी दास जी ने राम चरित्र मानस के उतरकांड़ में गुरु की महिमा के बारे में लिखा है। गुरु के मार्ग निंदेशन के बिना कोई भी मनुष्य इस भवसागर को पार नहीं कर सकता, भले ही वह ब्रह्मा या शिव ही क्यों न हो। आशय है कि प्रत्येक को मार्ग निंदेशन के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। महाऋषि बाल्मीकि ने भी रामायण के अयोध्या काण्ड में गुरु के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है। कोई मनुष्य बहुत बडा तपवस्वी, विद्वान, कुलीन ही क्यों न हो, किन्तु यदि वह गुरु भक्ति से विहीन हो तो उस का तपस्वी,

विद्वान, कुलीन होना व्यर्थ है। उसकी विद्या, कुलीनता और तपस्वर्य लोकार्जन तो क र सकती है। किन्तु उस का कोई भी फल उसे प्राप्त नहीं होता। यदि चांडाल ने भी गुरु भक्ति रूपी अग्नि से अपने पाप रुपी कष्टों का स्वाह कर दिया है तो वह संसार में आदरणीय है। इसके विपरीत जो विद्वान होते हुए भी गुरु भक्ति से हीन है वह आदर के योग्य नहीं होता। महाभारत के वन पर्व में भी गुरु महिमा का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि गुरु भक्ति किये बिना ज्ञान की प्राप्ती नही होती। आत्सदद, गृह सूत्र में भी गुरु को ही मनुष्य का वास्तविक जन्म दाता कहा गया है। माता पिता जन्म अवश्य देतें है परन्तु किसी भी व्यक्ति का वास्तविक जन्मदाता गुरु ही होता है। गुरु ज्ञान के बाद ही मनुष्य का वास्तविक जन्म होता है। वही जन्म श्रेष्ट होता है। पदम पुराण और भूमि खण्ड में कहा गया है कि सूर्य से दिन में, चन्द्रमा से रात्रि में, दीपक से घर में उजाला होता है। लेकिन गुरु तो शिष्य के हृदय में दिन रात ही उजाला किए रहता है। गुरु शिष्य का अज्ञान अन्धकार नष्ट कर देता है। अतः शिष्यों के लिए गुरु परम तीर्थ होता है। इसके अलावा भारतीय धर्म साहित्य और संस्कृति में अनेक ऐसे दृष्टांत भरे पड़े हैं जिसमें गुरु का महत्व प्रकट होता है। यहाँ तक की विशिष्ट को गुरु के रुप में पाकर श्री राम ने, अष्टावक्र को पाकर जनक ने और सांदीपनी को पाकर श्री कृष्ण, बलराम ने अपने आप को बड़ा भागी माना है। गुरु की महत्ता को बनाए रखने के लिए ही भारत में गुरुपूर्णिमा को ही गुरु पूजन या व्यास पूजन किया जाता है।

शब्दार्थ:- जब से जीव संसार में आया है तब से ही जीव को ज्ञान धारण करने के लिये किसी ना किसी गुरु की शरण को आरण करके ही ज्ञान प्राप्त हुआ है चाहे वह सांसारिक ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान, विद्या का ज्ञान व अन्य किसी भी प्रकार का ज्ञान इत्यादि हो। सार निर्णय यह है कि संसार में पग-पग पर किसी न किसी कार्य को करने के लिये ज्ञान की जरूरत पड़ती है और वह ज्ञान जीव जिससे भी प्राप्त करता है उसको अपना गुरू मानता है। बिना गुरु के ज्ञान के जीव का कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता।

बिन सतगुर साजन सन्त के ,कौन बतावे भेद ।
'गंगत' मिथ्या भरम ये, नित चित कीजे छेद ।।

जीव का सबसे पहला गुरु उसके माता पिता ही हैं जिनसे वह परिवारिक ज्ञान, समाजिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान ग्रहण करता है। जैसे जैसे जीव के शरीर का विकास होता है, बुद्धि विकसित होती चली जाती है जीव अपनी जिन्दगी की जरुरतों को पूर्ण करने की खातिर कई किस्म का ज्ञान (नाम, बीजमन्त्र) अपने जीवन में पूर्ण गुरु से धारण करता है।

रहनी वाले गुर मिलें, पाइये नाद विचार ।
'मंगत' बिपता सब मिटे, तिस गुर के उपकार ।।

पूर्ण गुरु वह ही हो सकता है जिसने ज्ञान को अपने जीवन में धारण किया हुआ हो। गुरु शब्द का मतलब है कि अन्धकार को नाश करने वाला। वास्तव में तो गुरु एक शब्द सरूप परमेश्वर ही है जो तमाम भ्रम अन्धकार से निर्मल है और तमाम भ्रम अन्धकार को नाश करने वाला है, अखण्ड प्रकाश घट घट व्याप रहा है उस परम तत्त

को जब बुद्धि अनुभव करती है तब सब अन्ध
कार से पवित्र होकर प्रकाश रूप में लीन
हो जाती है। इस जीव को हर वक्त शिक्षा
की जरूरत है। बगैर शिक्षा के सांसारिक
तथा परमार्थिक बोध नहीं हो सकता है।
सच्ची शिक्षा सच्चे गुरू से ही प्राप्त होती है।

बिन गुरभेद ना पाईये, सतनाम तत्त सार।
'भगत भेदी गुर मिले, तब जाये तृखा संसार ॥

परमार्थिक गुरु वह ही हो सकता है जिसने
परम तत्त अविनाशी शब्द सरूप परमेश्वर में
स्थिति प्राप्त कर ली हो और तमाम तृष्णा
विकार से जो पवित्र हो चुका हो, यानि हर
वक्त अपने अन्तर विखे परम प्रकाश में जो
लीन रहता हो। सिर्फ ईश्वर प्राप्ती का रास्ता
जानने वाले को गुरु नहीं कहते, बल्कि ईश्वर
सरूप में जो आनन्दित हुआ हो, वह असली
गुरु (पूर्ण गुरु) है। सिर्फ रास्ता जानने से गुरु
कहलाने का पात्र (मुस्तहिक) नहीं हो सकता,
जब तक कि वह अपनी सत श्रद्धा और प्रेमा
भक्ति से अन्तरगत शब्द स्वरुप परमेश्वर में
लीन न हो जावे। शब्द स्वरूप परमेश्वर में
लीन हुआ ही पूर्ण गुरु है।

साचा गुर हर रूप है, सकल जियाँ आधार।
'मंगत' पड़यो चरन तिस, करड़्ड़वत बारम्बार ॥

श्री सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी
महाराज इस जीव को सुचेत कर रहे कि
हे जीव! यह मानुष चोले का जो कीमती
समय तेरे को मिला है उसमें सच्ची करनी
का विचार कर। क्योंकि यह विचार तूं मानुष
चोले में ही कर सकता है बाकि सब योनियाँ
कर्म भोग योनियाँ है। उसमें जीव अपने भले
बुरे, सत असत का विचार नहीं कर सकता
है। क्योंकि इस कीमती समय (आयु) का
किसी को पता नहीं कब समाप्त हो जाये
और दुबारा (जन्म) कब प्राप्त हो। यह सब
प्रभु के हाथ में है। इसलिये तू नित ही प्रभु
परमेश्वर का सिमरन करते हुए मन से दूसरों
की मलाई निष्काम सरूप से अपने जीवन में
धारण कर और अपना जीवन दूसरे प्राणियों
की सेवा में अर्पण करते हुए अपना जीवन
परउपकारी बना। निष्कामता का सरूप श्री
सतगुरदेव अपनी वाणी में फरमा रहे हैं-

निष्काम करम इस बिध चित धारो।
प्रभ भावी हिरदे विचारो ॥
सब कुछ दात साहब की देखो।
आज्ञा मान परम सुख पेखो ॥
दृढ़ निश्चय जब एह बिध पाई।
निष्काम बुद्धि मारग लखाई ॥

अपने जीवन में क्षमा व गरीबी को धारण
कर यानि गरीबी का मतलब कि हर एक
सुविधा, धन दौलत तेरे को प्राप्त हो तो अपने
जीवन को मर्यादित करते हुये उससे दूसरों
की सेवा करे और हर समय चित्त से प्रभु
परमेश्वर की याद अपने मनमें बनाए रखें।
किसी सच्चे साधु की सरनागती होकर पवित्र
ज्ञान को ग्रहण करके अपने आप को सबसे
तुच्छ समझता हुआ उस ज्ञान रूपी नाम का
सिमरन करते हुए प्रभु परमेश्वर के चरणों
में अरदास कर कि हे प्रभु! इस अन्धमति,
अज्ञानी, तुच्छ बुद्धि के उपर कृपालता करें
जिससे इस अन्धमति जीव का उदार हो
सके। सतगुरू प्राप्त युक्ति से और उसके
सिमरन से ही जीव के मन के अन्दर प्रकाश
रूपी दीपक का उजयार होता है यह श्री
सतगुरूदेव जी का फरमान है।

प्रभ चरनी परतीत रख, मन की भरमन त्याग।
'मंगत नाम के सिमरन कारने, जग आया जीव वडभाग ॥

सतगुरू प्राप्त युक्ति (नाम) का सिमरन
हर घडी हर पल करने से और जैसे
जैसे उस नाम में परिपक्ता हासिल होती
जायेगी यानि उठते-बैठते, चलते-फिरते,
सोते-जागते, पल-पल विखे मन जब उस
नाम का आधार होता जायेगा त्यों-त्यों
मन के संकल्प-विकल्प नाश होने शुरू हो
जायेंगे। जैसे-जैसे मन नाम की दृढ़ता को
धारण करता जायेगा तो मन बाहरमुखी से
अन्तरमुखी होता जावेगा। जिस वक्त मन
पूर्ण सतपरायणता को धारण कर लेता है तो
घट के अन्दर ही तो सब का सरजनहार,
घट-घट वासी, आनन्द सरूप, शब्द सरूप
प्रभु परमेश्वर का ही आधार बुद्धि अनुभव
करती है और उस शब्द सरूप परमेश्वर का
ही विचार हर समय बुद्धि करती है।

शब्द सरूप को सिमर के,
भव उतरे गुनी अनन्त।
'मंगत' शबद तत्त सार है,
साखी रूप भगवन्त ॥

इस से बुद्धि के सारे भरम, मोह व ममता
का नाश हो जाता है और हर समय मन
बुद्धि उस सतनाम में ही लवलीन रहती है।
मन अन्तरमुख होकर अनहद नाद पारब्रह्म
का ही ध्यान हर समय करता है और अपनी
सुरत को उस प्रभु के नाम में एकाग्र करके
देहपरायणता का त्याग करके उस नाद
सरूप पारब्रह्म का हर समय रस ग्रहण करती
है। जब ऐसी दृढता प्रभु परमेश्वर के नाम
में परिपक्व हो जाती है तो पाँच विकारों का
नाश हो जाता है और मन इन्द्रियों के विषय
विकारों का त्याग कर अन्तरमुखी होकर
उस शब्द सरूप पारब्रह्म का सतगुरू प्राप्त
युक्ति से हर समय सिमरन करता है। श्री
सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज
फरमा रहे हैं कि जिसकी ऐसी अवस्था है यह
ही पूरा गुरु कहलाने योग्य हैं।

साचे नाम को सिमरिये,
सतगुर सीख को पाए।
'मगत मिले अमोल फल .
शब्द रतन सुखदाये ॥

श्री सत्तगुरूदेव जी फरमा रहे है कि जिसने
अपने मन की चंचलता को उस असीम प्रभु
के नाम सिमरन द्वारा त्याग कर दिया है
और एक प्रभु के नाम सिमरन से जो अपने
घट में ज्ञान संरूप आत्म को प्रगट कर लिया
है। हर समय उस अखण्ड नाद पारब्रह्म के
ध्यान में मगन समाये रहते हैं . एक पलक भी
उस अखण्ड नाद ब्रह्म को भूलते नहीं है और
अपने तन मन की इच्छया को समाप्त करके
अपने आप को ब्रह्म शब्द में लीन कर दिया
है . ऐसी करनी व रहनी वाला साधु ही पूर्ण
गुरू है।

अखंड नाद धुन परगट होई,
मनसा भई लवलीन |
'मंगत' दुर्मत भरम विनासा,
अपने आप लयो चीन ॥

ऐसे गुरु अपने तन मन का सब अहंकार
व मान को त्याग कर अपने आप को उस
प्रभु परमेश्वर का तुच्छ दास समझ कर सब
बाद मुबाद से न्यारा रहते हैं और अपने
अन्दर उस प्रभु परमेश्वर की प्रेमा भक्ति को
प्रगट किए हुए होते हैं। उस आत्म संरूप
प्रभु परमेश्वर को ही कर्ता हर्ता मान कर
पूर्ण विश्वास से अपने तन मन की इच्छया
को त्याग कर इस नश्वर संसार से वैराग
को धारण किये हुए होते हैं केवल हर समय
उस प्रभु परमेश्वर के नाम सिमरन में अपनी

सुरती, मन को पवन रूपी स्वासों के संग

बन्धायमान किये रहते हैं और उस शब्द
सरूप परमेश्वर को जिस का घट-घट में
प्रकाश हो रहा है, उस आनन्द सरूप की
धुन्न को अपने घट के भीतर सुनते हैं हर
समय उसी में ही अपनी सुस्ती को मगन
किये रहते हैं। उन्होंने ने अपनी सिद्धता
द्वारा उस निराकार पुरख का प्रेम प्राप्त
करके अपने घट के भीतर बैठे आत्म सरूप
निरंकार पुरख से एकाकार किया होता है।

खोजो साचे नाद को, जुग जुग कथा आपार।
'मंगत भेदी नाद का, तिस गुर तो बलिहार॥

श्री सतगुरु महात्मा मंगत राम जी महाराज
फरमा रहे कि इस प्रकार की साधना को जो
साधु प्राप्त होकर उस निर्मल शब्द सरूप
पारब्रह्म को प्राप्त हुआ होता है उसने अपने
भरम को दूर किया होता है और सब जीवों
का अपने निर्मल ज्ञान द्वारा उनका भरम भी
दूर करता है। ऐसे गुरू ने पहले अपने सभी
विकारों व भरम को सतपुरषार्थ द्वारा दूर
किया हुआ होता है और हमेशा सच्चखण्ड
में निवास करता है। अन्य जो भी सतमार्ग के
अभिलाषी जीव उसके सम्पर्क में आते हैं उन
को भीकल्याण का रास्ता दिखा कर सतमार्ग
की तरफ अग्रसर करता है। वह ही संसार
में पूरा गुरू है।

दुर्लभ दर्शन तिन का जग में,
जिन अन्तर प्रभ दरसायो।
'मंगत' निर्मल सिखिया तिन की,
सब मन के दोश मिटायो।।

सतगुरूदेव श्री महात्मा मंगत राम जी
महाराज पूरे गुरू के लक्ष्णों के बारे में ब्यान
कर रहे हैं। पूर्ण गुरू हमेशा दयालु, उदार
चित, खिमावान व सब भय भरम से निवृत
हुआ होता है उसका मन निश्चल, बुद्धि
एकाग्र, विषय विकारों से उपरस हमेशा ज्ञान
सरूप आत्मा में करता है और हर समय शब्द
ब्रह्म में लीन रहता है। ऐसे गुरु का आहार
हर एक से प्रेम होता है। श्री सतगुरूदेव जी
फरमा रहे है कि ऐसे गुरु से शिक्षा प्राप्त
करके सतपुरुषार्थ से नाम सिमरन द्वारा साध
ना को प्राप्त करने से जीव को शब्द ब्रहा
की प्राप्ती हो सकती है परन्तु ऐसा गुरू जीव
को बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। ऐसे गुरु के
चरनों में अपना तन मन अर्पन करने से जीव
के सारे भरम और भेद समाप्त हो जाते हैं।

गुर महमा अपरम अपार है .
साखी कथी ना जाये।
'मंगत' दुर्गम मारग जगत का,
पल में दियो चुकाये॥

ऐसे गुरु का अमृत वचन (नाम, बीजमन्त्र)
जब जीव ग्रहण कर लेता है तो वह संसार
रूपी भरम से उपर उठकर हमेशा सतचित
आनन्द का ही ध्यान करता है और सब जीवों
से प्रेम करता है। ऐसे सतपुरुष के दर्शन मात्र
से ही जीव की जन्म-जन्म की मैल व मोह
ममता का नाश हो जाता है और ज्ञान सरूप
आत्मा का प्रेम हृदय में प्रगट होता है। अन्त
में श्री सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी फरमा
रहे है कि ऐसे सतपुरुषों की लीला का ब्यान
सिद्ध पुरुषों और अवतारों ने ब्यान करके उनके
आगे नतमस्तक हो गये और कहा कि आप की
लीला अनन्त, अपार व अवर्णीय है। धन्न ऐसा
जीव है जिसको ऐसे सतगुरू की प्राप्ती हुई है।
और उसकी सत शिक्षा को ग्रहण करके उस
संत पार तुझे शब्द सरूप की प्राप्ती हुई है।

नित सिमरो वड़भागियो, शब्द पुरख प्रम देव।
मिथ्या इस संसार में, पूरन ये ही सेव

कामिल (पूर्ण) गुरू की पहचान

श्री सतगुरूदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज
के मुखारबिन्द द्वारा उच्चारण फरमाये गये
वचनों द्वारा सच्चे सत गुरू की पहचान।
आप ने फरमाय! लाल जी . यह बिलकुल
ठीक है कि पाखंड में फंसने की बजाये निगुरा
(बिना गुरू) के ही रहे। परन्तु निरंतर खोज
में लगे रहना चाहिए। हां, ये तुम्हें थोड़े से में
कामिल गुरु की पहचान बतला सकते है।
उन पर पूरे उतरे हुए पुरूष से तुम धोखा नहीं
खाओगे तो लो सुनो या लिख लो :-
1 कहनी और रहनी जिसकी एक है।
2 जो अपने आप में ही पढ़ा हुआ हो, यानी
किताबी ज्ञान का जानने वाला न हो बल्कि
मन की किताब पढ़ा हुआ हो।
3 मानसिक शान्ति का नमूना हो।
4 शरीर के मान और धन के लोभ से जो
मुबर्रा (मुक्त) हो चुका हो।
5 बैठक जिसकी बहुत हो।
6 स्त्रियों से जो कतई किनाराकश हो, यानी
किसी हालत में भी अकेली स्त्री को पास
न बैठाने वाला हो।
7 निहायत दयालु चित्त हो।
8 वैराग्यवान जिसकी हर वक्त सीरत (स्वभाव)
रहती हो, यानी जो लिप्त न हो।
9 जो नौ दरवाजों की वासना से अतीत हो
कर सदा महा आकाश (अविनाशी शब्द
ब्रह्म) में विराजमान रहता है। ऐसा आत्म
निष्ठ पुरुष परम गुरु है, क्योंकि उसने
त्रैगुणी माया से अबूर (पार) पाकर विश्राम
पाया है और वह दूसरों के लिए भी परम
शिक्षक है। ऐसे गुरु में तत्काल विश्वास
करना चाहिए। विश्वास या श्रदा के होते
ही गुरु कृपा तेरे अन्दर अपने आप उतरने
लगेगी और फिर गुरु कृपा से जो साधन
प्राप्त होगा, उसकी कमाई करके तू उस
शक्ति को समझने लगेगा जो तेरे शरीर
में बिलकुल अलग है क्योंकि तेरे शरीर में
भय, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, मरना, जीना
इत्यादि विकार हैं। आत्मा इनसे परे है।
जब तू उस आत्म सरुप में स्थित होगा,
तो किसी भी हालत में जीकर शान्तिमय
रहेगा। यानी जब तू साधन में लग जावेगा
तो चाहे कैसी ही हालत में से तू गुजरे,
शान्त रहेगा। बगैर साधन के तू ऐसा है
जैसे पानी बिन घड़ा।
प्रश्न:- महाराज जी, यदि कोई तत्ववेता
सतगुरु न मिले तो फिर क्या करना चाहिए ?
उत्तर:- प्रेमी जिस जिज्ञासु के अन्दर प्रभु प्रेम
के लिए अति प्रेम और श्रदा होती है तथा लगन
और तड़प इस प्रकार की हो कि सिवाय भगवद्
प्राप्ती के दूसरी कोई कामना चित्त के अन्दर न
हो, स्वयं भगवान किसी न किसी रूप में आकर
दर्शन दे जाते हैं। एक नुक्ता और समझाते हैं।
जरुरी नहीं कि तू मठों और गद्दियों में जाकर
ख्वार होता फिरे। अन्तर्यामी घट-घट की जानने
वाले हैं। किसी न किसी प्रकार से उसे उपदेश
मिल ही जाता है। करने वाला सो ही है।
प्रश्न:- संत और असंत में क्या भेद है।
उत्तरः- संत गुस्सा (क्रोध) और ख्वाहिशात
(कामना) से परे होते हैं और असंत इनमें

गलतान (फंसा होता है। यानी शरीर में फंसा हुआ असंत है और शरीर से उपर उठा हुआ संत है। जिस संत के पास पहुँच कर बुद्धि का तर्क-कुतर्क समाप्त हो जाए वह पूर्ण संत है।

प्रश्न:- महाराज जी, क्या बगैर उस्ताद के भी किसी और युक्ति से आत्म साक्षात्कार हो सकता है।

उत्तर:- नहीं, तुम जैसी अवस्था वालों को नहीं। ठीक साधन तो कामिल गुरु की कृपा से ही पता चलता है। इस वास्ते किसी भी कामिल (पूर्ण) गुरु पर पूर्ण विश्वास या ईमान लाने से पहले यह अच्छी तरह ठोक-बजा कर देख ले कि जो कामिल गुरु की पहचान गुरु में होनी जरुरी बतलाई गई हैं वे उसमें हैं कि नहीं। अगर नहीं हैं तो कभी ईमान ना लाओ। उस गुरु से तेरा कल्याण होने वाला नहीं है। अगर सब सिफात (गुण) वहाँ मिलते हैं तो हील-हुज्जत छोड़कर विश्वास कर लेना चाहिए। तब वह सतगुरु कृपा करके ऐसा साधन बतलावेगा जिसके द्वारा तू सब दिक्कतों (कठिनाइयों) से अबूर पाकर परम शान्ती को प्राप्त हो जावेगा। वरना प्रेमी जी, डर है कि कहीं तुम्हारा यह सात्विक जीवन उल्टा न हो जावे, और ज्यादा परेशानी में न पड जावे, क्योंकि इस रचनात्मक संसार में तू अपने पुराने उज्जवल संस्कार करके फंस नहीं सकता लेकिन कामिल रहुनमाई (पूर्ण नेतृत्व) के बगैर पूर्ण विश्वास कठिन है। इस तरफ संसार की गर्दिश में तो तुझ को कुछ मिलेगा नहीं बस तू गहरे अजाब (घने दुःख) में फंस जायेगा। इस करके ज्लद ही किसी कामिल उस्ताद (पूर्ण गुरु) की तलाश करने की कोशिश करनी चाहिए।

मानुष के कल्याण का मार्ग क्या है ?

यह शरीर कर्म का जन्तर (यंत्र) है जिससे नाना प्रकार के कर्म हर पल प्रगट होते हैं और जीव शरीर की ममता को धारण किए हुए तमाम कर्मों के भोगों में आसक्त होकर हर वक्त चलायमान होता रहता है। किसी हालत में भी संन्तोष को प्राप्त नहीं हो सकता है। इस अशान्ति की निवृत्ति का सहज उपाय यही है कि पहले अनर्थक कर्म जो शारीरिक उन्नति की नाश करने वाले हैं उनका त्याग किया जावे। बाद में जो सतकर्म बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं उनमें दृढ़ निश्चय धारण करके, प्रभु इच्छा को निश्चित करके विचरना ही कल्याण को देने वाला यत्न है।

सादगी, सेवा, सत, सत्संग और सत्सिमरन आदि गुणों के साधनों को धारण करने से बुद्धि अधिक बलवान हो कर तमाम अनर्थक कर्मों का त्याग कर देती है। यानी इन साधनों के बगैर कई प्रकार के अवगुण हर वक्त बुद्धि को भरमाते रहते हैं। अच्छी तरह से विचार करने से सब सही सार का पता लग जाता है। एक प्रभ विश्वासी होकर तमाम शरीर के दुःख व सुख उसकी आज्ञा में निश्चित करना ही असली कल्याण का मार्ग है।

धर्म ग्रन्थों पर वार्तालाप

प्र. महाराज जी, महर्षि व्यासदेव की रची हुई भगवद्गीता नाम की पुस्तक है, उसमें श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को जो ज्ञान दिया है उसके बारे में आपका क्या विचार है ?

उ. प्रेमी जी, शरीर और आत्मा के विज्ञान को संक्षेप में अच्छी तरह से समझाने वाला यह एक अनुपम ग्रंथ है।

प्र. महाराज जी भगवान कृष्ण ने अर्जुन को महाभारत के समय, जब युद्ध के लिए दोनों ओर सेनाएं खड़ी थीं, इतना लम्बा उपदेश गीता का किया होगा, समझ नहीं आता।

उ. प्रेमी, आप ठीक कहते हैं। इतना समय नहीं था और न ही इतन लम्बा उपदेश कृष्ण ने दिया था बल्कि उन्होंने थोड़े शब्दों में अर्जुन के संशय और भ्रम को निवृत्त किया था। इसके पश्चात् व्यास ने उस तत्व ज्ञान के आधार से गीता विस्तार से लिखी ।

प्र. महाराज जी, गीता में भगवान कृष्ण फरमाते हैं कि जो जीव अन्तिम समय 'ओम्' अक्षर का अभ्यास करते हुए प्राण त्यागता है, वह मुझे प्राप्त होता है। यदि ऐसा है जो जीवन भर अभ्यास करने से क्या लाभ है ?

उ. प्रेमी, कृष्ण का भाव 'ओम्' अक्षर से 'शब्द' की अनुभवता है और यदि शब्द की अनुभवता और स्थिति प्राप्त न होवे जो अन्तिम समय अभ्यास का होना कठिन है।

प्र. भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, 'हे अर्जुन, जो मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प भी भेंट करना है मैं उसे स्वीकार करता हूं।' इसका क्या भाव है?

उ. प्रेमी, कृष्ण का भाव यहाँ यह है कि जो थोड़ी श्रद्धा भी रखता है वह उस परम तत्व की प्राप्ति में उन्नति करता है।

प्र. महाराज जी, दुर्गा भागवत् में दुर्गा का जो रूप वर्णन किया है और उसकी जो लीला बयान की है उसके बारे में आपकी क्या राय है ?

उ. प्रेमी जी, पुरातन काल में यह एक वर्णन करने का ढंग था जो कि बाद में स्वार्थी लोगों ने अपने तसव्वर (कल्पना) घड़कर अपनी पेट पूजा का धन्धा बना लिया। दुर्गा भागवत् में दुर्गा का जो रूप शेर की सवारी का बतलाया गया है और दुर्गा के जितने हाथ दिखाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि अहंकार रूपी शेर पर जो सवारी करता है यह असंख्य हाथों से ऊपर उठाया जाता है और असंख्य हाथ उसका हर कार्य करने को तैयार रहते हैं।

प्र. महाराज जी कृष्ण जी ने अपने आप को खुदा (ईश्वर) करके संबोधन किया है। बार-बार ऐसा कहकर अर्जुन को समझाते रहे है ?

उ. प्रेमी जी, श्री कृष्ण ने अपने जिस्म को खुदा नहीं कहा। उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप को हर समय समझा हुआ था। इस प्रकार ठोक बजाकर किसी सत् पुरुष ने अपने आप को ब्रह्म स्वरूप नहीं कहा है। बार-बार आत्मा की तरफ उनका इशारा हुआ करता था। कृष्ण की स्थिति को कृष्ण बनकर ही जाना जा सकता है। आप संसारी जीव इनके गुप्त ज्ञान को नहीं समझ सकते हैं। वह परम राजयोगी थे। इन नाचने वाले रासधारियों ने उन्हें और रूप दे रखा है। उनके वास्तविक ज्ञान की तरफ जाओ। ऐसा ज्ञान इस संसार में कोई गृहस्थी जीव तीन काल

नहीं दे सकता है।
प्र. महाराज जी, शास्त्रों में गंगा मइया की बड़ी महिमा है। कृपा करके इसके बारे में समझाने की कृपा करें ?
उ. पुरातन ऋषियों ने जिस बात का बयान किया है वह खत्म हो गई। अब पेट के स्वार्थी लोगों ने मन गढ़त कहानियाँ घड़-घड़ के अपना धंधा बना रखा है। लो सुनो, कपाल रूपी आकाश से उतरकर सुषमना नाड़ी के द्वारा सारे शरीर को प्रकाश करने वाली शक्ति को ज्ञान रूपी बुद्धि (भगीरथ स्वरूप) जब अनुभव करती है तब वासना रूपी तपन शान्त होकर अविनाशी शब्द को प्राप्त हो जाती है। यह ही आत्म शब्द की धारा गंगा का स्वरूप है। इसमें स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। कर सकते हो तो करो।
प्र. महाराज जी, राक्षसों और देवताओं ने समुद्र मन्थन करके रत्न निकाले थे। इस बारे में आपका क्या ख्याल है ?
उ. प्रेमी, यह भी वही बात है। पेट रूपी समुद्र को प्राण अपान रूपी मथानी से मथकर ज्ञानरूपी रत्न निकालते हैं। मनुष्य के अन्दर देवमई और आसुरी दोनों प्रकार की वृत्तियाँ हैं उन्हीं के द्वारा यह समुद्र मथा जाता |
प्र. पहले जमाने में गोमेध और अश्वमेध यज्ञ ह र इन्सान कर लेता था और उसकी बड़ी महिमा शास्त्रों में बयान की गई है। यह कैसे सम्भव हो सकता है ? राजा के सिवाय गोमेध और अश्वमेध यज्ञ दूसरा कौन कर सकता है ?
उ. प्रेमी, सब पाखण्ड है। ऋषियों का जो असल भाव था उसके अर्थ का अनर्थ किया जा रहा है। यज्ञ के अर्थ त्याग के हैं। गोमेध यज्ञ के असली अर्थ हैं विषयों का त्याग अर्थात् इन्द्रियों का दमन करना और अश्वमेध यज्ञ' के अर्थ हैं प्राणों का दमन (नियमन) करना ।
प्र. वेदों में तो हवन, यज्ञ पूजन को बड़ा महत्व दिया गया है। अश्वमेध यज्ञ इत्यादि के साथ बड़ी घटनाओं का जिकर आया है। आपकी इस बारे में क्या राय है ?
उ. हवन कुंड तो नाभि में मौजूद है। आहुति डालती है तो अपने प्राणों की डाल जब तक तेरी सुरति बाहरमुखी होकर माया को अन्दर उडेल रही है, यज्ञ पूजन का सवाल ही नहीं उठता। यही सुरति जो प्राणों पर सवार होकर अन्दर बाहर आ जा रही है, जब अन्तर्मुखी होगी तब तेरा हवन कुण्ड शुद्ध होगा। और तब तू सोध कुण्ड के पास जाकर प्राणों की आहुति डालने के काबिल होगा।
रहा सवाल अश्वमेघ यज्ञ का यह तेरा विकराल मन ही खुला हुआ घोड़ा है। जिधर जाता है। बाहर के आकर्षण इसे पकड़ लेते हैं। जब यह तेरे काबू में आ जाएगा तब तेरा अश्वमेध यज्ञ पूरा होगा। पुरातन किस्से कहानियों को छोड़कर प्रण करके मन और प्राणों की रक्षा करो ताकि सुरति (बुद्धि) अन्तर्मुखी हो और हरि सिमरण द्वारा निज थाओं (मंजिल) में वास कर सके।
प्र. महाराज जी शास्त्रों में जो विष्णु दूत और यमदूत का वर्णन आता है , कृपया इसके बारे में कुछ रोशनी डाले ?
उ. लाल जी, पुरातन शास्त्रों में उपमा और तशरीह (व्याख्या) देकर अध्यात्म विद्या का बयान किया गया है तेरी देव वृत्तियाँ ही विष्णु दूत है और आसुरी वृत्तियों ही यमदूत हैं।
प्र. योग वशिष्ठ में दिया हुआ है कि वशिष्ठ जी ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा कि फलां-फलों समय में कृष्ण का अवतार होगा, जो गीता का उपदेश प्रगट करेंगे। क्या महापुरुष ऐसी भविष्यवाणियाँ कर दिया करते हैं ?

शेष पृष्ठ सं0 35 पर

मघर माह

मघर मुकत रस हरजन पाया, सत शब्द कथा घट जानी।
समाई। अन्तर सुरती लीन समाई, नित सुनी अनहद धुन बानी ।।
शब्द अगोचर परगट पाया, सुरत आकास समाई।
पाँच दोख तीन ताप निवारे, सत ठाकर सेव कमाई ।।
नौ द्वार की तृष्णा नासी, सत शबद में जीवन पाया।
देह त्याग निरदेह तत्त सूझा, काल को मार गिराया।।
कोट मद्धे कोई भेद पछाने, जिस मन की दुबधा त्यागी।
एक नाम में जीवन जीवे, साचा सन्त अनुरागी ।।
कहन कथन में चतुर बहु देखे, अन्तर सार नहीं जानी।
'मंगत' कथनी मध में डूबे, बड़े चतुर बुद्ध ज्ञानी ।।

अर्थ- माह कार्तिक में श्री गुरूदेव जी ने फरमाया था कि नित प्रभु की कीर्ति का गायन करते हुए मन ने संकल्प रहित होकर समाधि अवस्था को प्राप्त कर लिया तब माया जालरूपी भ्रम तथा उपाधियाँ निवृत हो गई और मन और प्राण एक रूप होकर नाम रूपी रतन पदार्थ का सेवन करने लगे जिससे सत मार्ग को ग्रहन करने पर शब्द ब्रह्म से प्रकट रूप में मिलाप हो गया और बुद्धि छिन छिन नाम का सिमरण करके करम रूपी मैल को धोने लगी तब आशा तृष्णा रूपी यह संसार का भ्रम मिट गया और एक अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हो गई। केवल एक अखण्ड शक्ति शब्द ब्रह्म का, जिसका न कोई रूप है, न वर्ण, अनुभव करके मन निःचल ध्यान में मग्न हो गया और हृदय में एक अगम ज्योति प्रचण्ड हो उठी। बुद्धि अब बाहर मुखी भ्रमण को त्याग कर अन्तर में आत्म तत्व सार वस्तु का अनुभव करने लगी और उसे एक ऐसे अगम पथ की पहचान हुई जो कहने और सुनने में नहीं आ सकता। अब माह मघर में फरमाते है-

ऊपर की अवस्था को प्राप्त कर लेने पर हरिजन ने सत् शब्द का ज्ञान प्राप्त करके हृदय में मुक्त रूपी महारस आनन्द प्राप्त कर लिया और सुरती नित्य प्रति घट अन्तर लीन समाकर अनहद नाद रूपी वाणी को सुनने लगी। उस शब्द ब्रह्म रूपी अगोचर शब्द को प्राप्त करके सुरती आकाश अर्थात दसवें द्वार जाकर स्थित हो गई जिससे जीव के पाँचो दोष (काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार) और तीनों ताप (अधिभौतिक, अधिदैविक तथा अध्यात्मिक) उस सत् ठाकुर परम ब्रह्म की सेवा करने से निवृत हो गए।

अब जीव के नौ द्वारों से प्राप्त होने वाले विषय सुखों की तृष्णा निवृत हो गई और केवल सत् शब्द ब्रह्म को ही अपना जीवन जान लिया। देह की ममता को त्याग देने पर उस को निर्देह अवस्था की प्राप्ति हो गई

जो कि काल और कर्म की गति से परे की
हालत है।
करोड़ो में कोई विरला पुरूष ही जिसने पहले
मन की दुविधा निवारण कर ली हो इस मुक्ति
रूपी भेद को पहचान सकता है। वह केवल राम
रहित सत ही हो सकता है जिसने एक नाम के
आधार को ही अपने जीवन का धन मान लिया है।
हमने कथनी मात्र का ज्ञान करने वाले
बहुत से चतुर और बुद्धिमान देखे जिन्हें रचक
मात्र आन्तरिक ज्ञान के सार का पता नहीं।
श्री सत्पुरूष मंगतराम जी फरमाते हैं:- जबान
दानी (वाक चातुर्य) के अहंकार में ही हमने
बहुत से चालाक ज्ञानियों को डूबते देखा।
सार- जब सत् शब्द ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति
हृदय मन्दिर में अनुभव कर ली तो ऐसे हरिजन
को इस मुक्ति रूपी अमृत के महा रस के सेवन
करने का अवसर प्राप्त हो गया। अब सुरती ने
बाहर की भ्रमण त्यागकर नित्य अंतर मे लीन
होकर इस अनहद नाद रूपी गायन के अपूर्व
आनन्द का रसास्वादन करने लगी।
शब्द ब्रह्म जो मन वाणी इन्द्रियों तथा बुद्धि
की गमता से परे है, उसे प्रत्यक्ष रूप में अनुभव
करके सुरति दसवें द्वार में जाकर स्थित हो गई
ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेने पर जीव के
काम, क्रोध लोभ, मोह तथा अहंकार आदि पाँचों
महादोष और अधिभौतिक, अधिदैविक तथा
अध्यात्मिक रूपी यह तीनों ताप सहज स्वरूप
ब्रह्म की सतसेवा करने से निवृत हो गये।
जीव अनादि काल से शरीर के नौ द्वारों के
भोगों की तृष्णा में बन्धा हुआ है, क्योंकि उसने
इन्ही भोगों को आनन्द मान रखा है। एक भोग
की प्राप्ति का यत्न और फिर दूसरे भोगों की
तृष्णा, इस चक्कर में पड़ा हुआ जन्म मरण के
दुखों को भोगता चला जा रहा है परन्तु जब
उसे सत् शब्द रूपी ब्रह्म का ज्ञान होता है
तब जाकर उसे यह प्रतीत होने लगता है कि
मेरा असली जीवन धन और परम आनन्द की
खान तो केवल सत् शब्द ही है तब वह नौ
द्वारों के भोगों की तृष्णा से निवृत हो जाता है।
जब शरीर में उसके भोगों से वैराग्य पैदा हो
जाता है तब वह इस निर्देह रूपी मुक्त अवस्था
को प्राप्त कर लेता है। अब जाकर उसने काल
रूपी भयानक शत्रु को मार गिराया जो कि
अनादि काल से उसे जन्म मरण के चक्कर में
फिरा रहा था अर्थात जहाँ न देह है, न इन्द्रियाँ,
न मन बुद्धि तथा अहंकार वहाँ न तो कोई
कर्म है और न ही इसका फल, वहाँ काल की कोई
गम नहीं इसी अवस्था को मुक्त धाम कहते है।
करोड़ो में किसी विरले को ही सतज्ञान की
प्राप्ति की अभिलाषा होती है ऐसे करोड़ो मे
से विरला ही उसके लिये प्रयत्न करता है तब
जाकर उन करोड़ों में कोई एक अनेक जन्म के
सत् प्रयत्नों द्वारा सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।
ऐसा राग तथा द्वेष रहित जिसने अपने मन की
द्वैत रूपी दुविधा का त्याग करके समता को
धारण कर लिया हो, ऐसा सच्चा संत ही केवल
नाम को अपना जीवन धन मानता हुआ जीवन
व्यतीत करके सत्पद को प्राप्त कर लेता है।
परमार्थ मार्ग कथनी तथा करनी से ऊपर
रहनी अर्थात उस परम अवस्था में पूर्ण रूप
में स्थित हो जाने का मार्ग है। जहाँ जबानी
जमा खर्च का तो कोई मोल नहीं और करनी
वाला भी न जाने कब जाकर वहाँ पहुँचेगा।
हो केवल जिसने सत् स्थिति को प्राप्त कर
लिया वही उपमा योग्य है। कबीर साहब
फरमाते हैं:-

"करनी करे सो पुत्र हमारा, कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी

अर्थात जो अभी करनी ही कर रहा है वह हमारे
पुत्र के समान है, जो कथनी करने वाला है,
वह हमारे पोते के समान है और हाँ उस परम
स्थिति में स्थित रहने वाला हमारा गुरू है, और
ऐसे गुरु के ही हम साथी हैं।

कार्टों की बाड़, यह संसार

प्रेमी जी! संत मायावादी जीवों को अपनी
और खींचते हैं। तुम दूर भागने का प्रयत्न
न करो। यह मांगने वाले फकीर नहीं।
कुछ देकर ही जायेंगे। संसार एक कांटों
की बाढ़ है। मगर यह भोले और मोहवश
हुए जीव विवश हैं। उन्हें कोई मार्ग नहीं
सूझता क्या करे क्या न करें। जिस ओर
किसी ने लगाया वैसा ही करने लग गए।
सार ज्ञान के बिना नित्य ही जीव मोहवश
होकर जीव दुखी होता रहता है। तृष्णा की
अग्नि जलाती रहती है। कई प्रकार के करम
करता है कि चित्त को शांति मिले। पर
नित्य ही तृखावंत और डोलता हुआ भटकता
रहता है। आशा को पूर्ण करते-करते अनेक
जन्म धारण करने पड़ते हैं। लेकिन फिर
भी धीरज एक पलक की नहीं। ऐसा ही हाल
सब राजों, राणों तथा धनी-निर्धन का है।
अज्ञानता की जंजीर में बंधे हुए नाना प्रकार
के संसार को फैला हुआ देखकर इसके ग्रहण
और त्याग में सुख-दुःख महसूस कर रहे हैं-

कर्म द्वंद को धार के रागद्वेष में हुए अंगारी
धरती सागर चित्त ही नापे मिटे नहीं जीव खवारी
बहु रचना दे तृप्त नहीं पावे, करम फांसी में पड़े विशेखे
लखने न आवे अद्भुत खेल अपारा, पड़ा अंध मत धार भुलेखे
अनन्त सरूप देखे दिनराती, भिन्न भिन्न गुण करम दिखाई
अपनी अपनी करीडा सब करे सार बिना नित नित भटकाई
सत संगत के मेल से पाए करमगत सार।
'मंगत' ममता मध मिटे, जो अधिक पाप विस्तार।।

कोट जन्म इच्छया में धारे, मिटी न आपामत खवारी
'मंगल' बिन सत्गुर साजन संत के, कौन बतावे भेद अपारी

इसलिए न रहने वाले संसार में छूटने का
उपाय हर समय सुनते रहना चाहिए।
"**सुन सुन पैदे अंधे राह"**-किसी न किसी
समय चल ही पड़ेगा। जब तक संसार को सुख
रूप जान रहा है। तब तक ईश्वर वाला रास्ता
मुश्किल है। जिस समय उदासी मत धारण
करोगे। तब सार जीवन के भेद को जानने की
कोशिश करोगे। इसी प्रकार लगे रहो।
एक सेवादार को उपदेश- जम्मू मई 1950
घाटा कुछ नहीं पड़ता सेवा में खर्च करने से
एक से अनेक हो जाते हैं। यह नहीं चाहते
थे और कुछ खड़ा करना न पाबंद (बाध्य) हो
जाना चाहते हैं। परन्तु संगत अधिक विवश
कर रही थी। चार वर्ष से संगत बिखरी हुई है।
आपस में प्रेमियों को इकट्ठा होने का अवसर
ही नहीं मिल रहा। संगत का रंग रूप तो ऐसी
चीज़ों से ही खड़ा रहता है। समता की तालीम
भी करीबन मुक्कमिल रूप में ही है। श्रद्धावान
प्रेमी भी काफी हैं। पुरुषार्थी करके आगे बढ़ने
की जरूरत है।
अंतःकरण में एक भंडार है-उस भण्डार में
एक रतन है। बूझो वह अनमोल रतन क्या है ?
. प्रभुप्रेम! जो इस रतन को प्राप्त कर लेता है
. वही संत है।

"सत प्रतीत भई प्रभ नाओं, जगजीवन फीफा लागा
बैठ एकान्त प्रभ नाम चितारे, सो साजन वड- भागा"

सच्चा सुख कब मिलता है!

वास्तविक सुख जिसकी चाहना हर एक प्राणी मात्र कर रहा है आपको तब मिलेगा जब आप निज स्वार्थ को छोड़ने के लिए तैयार होंगे। जबकि आप बिना कुछ कहे सुने उस वस्तु को छोड़ने के लिए तैयार होंगे जो आपको अति प्रिय है और जो आप से अपने आप छूट जावेगी। ख्वाहे आप छोडें अथवा न छोड़ें। तब आपको ज्ञात होगा कि जिसे छोड़ने में इतना कष्ट हो रहा था और उसी के छोड़ने में इतना सुख प्रतीत हो रहा है। इसलिए तो कहा है कि सच्चा सुख त्याग में है। यानि स्वयम् कष्ट उठाकर भी दूसरों को सुख देने में है।

जो वस्तु स्थाई नहीं है उसके पीछे दौड़ने से सच्चा सुख कैसे मिल सकता है। जो वस्तु स्थाई है उसी की प्राप्ति से हमें सच्चा सुख मिल सकता है। अतः अस्थाई वस्तुओं की कामना करना और उनसे चिपटना छोड़ दीजिए। तब आपको-

"सिया राम मय सब जग जानि" का अनुभव होगा। जब आप मन को बस में करेंगे। जब आप धीरे-धीरे पवित्र होते जायेंगे। जब आप दूसरों के लिए त्याग करेंगे। जब आपके हृदय में विश्व प्रेम होगा। तब आप को सच्चे सुख का अनुभव होगा और फिर कोई उसे छीन न सकेगा। जो अपने आपको दूसरों के प्रेम में भूल जाता है उसे ही सच्चा सुख मिलता है। आप अपने जीवन पर एक प्रकाश डालें तो ज्ञात होगा कि वह समय आपका सबसे अधिक सुखदायक था। जब आपने किसी से सहानुभूति तथा प्रेम भरे वचन कहे थे और नेकी का कार्य किया था। संसार में स्वार्थ ही सब झगड़े की जड़ है। स्वार्थी होना ईश्वरीय नियम के विरूद्ध है। जब हम विश्व प्रेम अनुभव करते हैं जो हमें स्वार्थ के त्याग करने पर मिलता है। तो उस समय हम अपने को ईश्वर के समीप अनुभव करते हैं। उसकी मधुर धुन श्रवण करते हैं। जिससे हमें सच्चा सुख प्राप्त होता है। संसार सुख के लिए इधर-उधर नाचता फिरता है। उस समय तक उन्हें सुख नहीं मिल सकता जब उन्हें यह ज्ञान न हो जाएगा कि सच्चा सुख स्वार्थ के त्याग पर ही मिलेगा।

आत्म स्थिति प्राप्त पुरुष सब कुछ कैसे जान लेता है ?

इस अवस्था को प्राप्त पुरुष की बुद्धि बडी सूक्ष्म हो जाती है तथा तीव्रता से हर विचार के अन्दर तक घुस जाती है और उसको भीतर से समझने की ताकत उसमें आ जाती है तो सब कुछ जान लेना कौन सी बड़ी बात है। सब प्राणी मात्र में बुद्धि होती है और इस करके शरीर खड़ा है। बुद्धि में जो अहंकार है, यह ही माया है। बुद्धि जिस (तत्व) करके रोशन है जब यह उस तत्व में स्थित होगी तब यह आत्म तदरुप होकर मुक्त हो जायेगी।

महाराज जी गुरु को पास कैसे समझा जाये

प्रेमी उसी प्रकार जिस तरह एक औरत
अपने यार (मुजले) के पास जा रही थी। रास्ते
में शाप मिला। साप ने उसे फुकारा। आगे
उसने कहा:-

कालिया नागा छजली वालिया। तुद डराइयों क्यों डरिये।।
मियाँ मुजले जैसे मन्दरेई होवण तुद उसियाँ क्यों मरिये।।

मेरा मॉन्दरी मुंजला है मैं उससे मिलने जा रही
हूँ तेरा डंक मुझे नही मार सकता। ऐसी निडरता
जिस जिज्ञासु के पास सत विश्वास करके आ
जाती है उसके पास गुरु को समझना चाहिए।
चोहा भगतां (अब पाकिस्तान में) में एक सूरज
संत महात्मा हुए हैं। उनके पास एक गुजर शाहानी
नाम का आकर बैठता था। एक बार सूरज भगत
जी को दुध की आवश्यकता पड़ी गुजर शाहानी
को कहा गया कि दूध ले आ। गूजर ने कहा
कि दूध खत्म हो गया है। सूरज महाराज ने कहा
कि अन्दर दूध काफी पड़ा है, जाकर ले आओ।
शाहानी ने जाकर जब अन्दर देखा जो वास्तव
में दूध बर्तनों में भरा पड़ा था। शाहानी वापिस
आकर सूरज भक्त के चरणों में गिर गया और
कहने लगा पीर जी, अल्लाह की राह हमें भी
समझाओ। बाद में शाहानी काउनपर ऐसा पक्का
विश्वास हो गया कि वह हर एक को कहता
फिरता:-

नाम शाहानी जात अहीर, सूरज मिलया सच्चा पीर।
अल्लाह कहो न कहो, सूरज सेती सच्चा रहो।।

मुझे शाहानी कहते हैं, मेरी जात अहीर है।
मुझे सच्चा गुरु सूरज भगत मिल गया। अल्हा
का नाम लो या न लो परन्तु सूरज भगत के
प्रति पूर्ण शरनागत रहो।
महाराज जी अपने अन्दर क्या क्या खामियां
(त्रुटिया) हैं, यह कैसे पता चले?-
प्रेमी! यीद इन पाँच असूलों पर तुम नहीं चल रहे हो
तो फिर खीमयां ही खामियां है। सादगी, सत, सेवा
सत्संग और सत् सिमरन यही पाँच असूल है। अगर
तरक्की नहीं हो रही तो लाल जी, मूर्खो की संगत
दो चार दिन करो। जब उनके बुरे काम देखोगे तो
नफरत (घृणा) पैदा होगी। फिर बुद्धि का सन्तों की
तरफ झुकाव होगा और श्रदा पैदा होगी। मूर्ख लोगों
को जब तुम भलाई की बात बताओगे तो वे मारेंगे
डंडा, देगें गाली, बस फिर तुम्हारी अक्ल ठिकाने आ
जायेगी। फिर तुम दुनियाँ की असलियत को सही
तरीके से समझने लगोगे। देखो प्रेमी यह दुनियाँ वाले
कितने दुःखी हैं इनकी वासना का काई अन्त ही
नहीं किसी तरह की भी शानती इन लोगों को नहीं।
पुत्र, पोत्र, दौलत, शादी ब्याह सब कुछ हुआ – फिर
भी बेचैन हैं बेकरार हैं। यह सोच कर अपने जीवन
का मुकम्मल प्रोगाम बनाओ और परमार्थ के रास्ते में
कदम बढ़ाते चलो। सत्संग द्वारा विचार ग्रहण करके
अपने प्रोगाम बनाओ और उसपर दृढ़ निश्चय से चल
पड़ो। इस जिन्दगी का आखिर मरण ही है, कोई भी
इस महाकाल कराल से नहीं बचा। तेरे शुद्ध विचार
ही विवेक हैं ऐसे विचारो की परिपक्वता ही निश्चय
है। गर्ज (स्वार्थ) छोड़ो,फर्ज को पकड़ो, तुम्हारा बेड़ा
ही पार है। पूँछु साहिब कहते हैं-
होनी सो होनी, खलकत ऐवें रोनी।
अपने उपर अपनी कृपा करो, इस का मतलब
यह है कि अपने आप को न ठगो।
समतावादी होने का क्या मतलब है
प्रेमी! मान से प्रेम, श्रद्धा, विश्वास बढ़ते हैं।

हमारा दुःख कैसे दूर हो ?

हम संसारी चाहते हैं सुख और उसके लिए ही दिन रात एड़ी-चोटी का जोर लगाते रहते हैं। विश्राम करने के लिए भी समय नहीं मिलता। पर क्या इससे हमें सुख मिल ही जाता हैं। सुखी होने लिए यह परम आवश्यक है कि जिस तरह का सुख हम चाहते हैं। उस प्रकार के सुख का स्वरूप हम जान लें वरन् हम दुःख को ही सुख समझकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। फलस्वरूप हमें सुख के बदले दुःख ही उठाना पड़ता है। यह निश्चित बात है दुःख के स्वरूप को जान लेने से हमें दुःख से बचने में सहायता मिलती हैं और सुख के सरूप को जान लेने से सुख की प्राप्ति में दुःख को दूर करने के लिए त्याग ही सर्वउत्तम उपाय है। इच्छा सभी प्रकार के दुःखों की जननी है। इसका त्याग करना चाहिए। मोह के कारण ही संबंधियों के बिछड़ने पर वियोग जनित दुःख का अनुभव होता है। अतः मोह को समूल नष्ट कर देना चाहिए। देह अभियान के कारण ही अपमान जनित दुःख आता है। इसलिए देह अभिमान का त्याग करना चाहिए। ममता तो दुःख का मूल है ही। इसकी वो जड़ ही उखाड़ फेंकनी चाहिए। जो संसार की आशा लगा कर बैठे हैं। उनको तो दुःख भोगना ही पड़ेगा। क्योंकि संसार की कोई भी शक्ति हमारी आशा को पूर्ण नहीं कर सकती। आशा तो उस पूर्ण प्रभु की करनी चाहिये।

सदा सुखी हो जाने के लिए हम अपने शरीर से संसार की सेवा करते रहें। मन से परम प्रभु को अपना मानकर उनके ही होकर रहें। बुद्धि से अपने शरीर का निश्यचकर लें कि "मैं कौन हूँ" इस प्रकार से हम संसार की सेवा का अर्थ संसार की वस्तु संसार के हवाले कर देना। संसार की वस्तु संसार को दे देने से हम संसार के ऋण से मुक्त हो जाएंगें। जब तक यह ऋण रहेगा। तब तक दुःख बना ही रहेगा।

पृष्ठ सं0 29 का शेष

उ. इस पर गौर करने से मालूम होता है कि यह रोचक विचार हैं और बाद में दरज किये गये हैं। क्योंकि आत्मदर्शी पुरुष हर एक देश में हुए हैं जैसे कि ईसा, मूसा, इब्राहिम, मुहम्मद, बुद्ध, महावीर वगैरा और कई हैं और होवेंगे, इनके बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की गई है। क्या उन्होंने थोडी कुरबानी पेश की है ? क्या आत्मसत्ता का विषय भारतवर्ष में ही अनुभव किया गया है ? और देशों में जो आत्मदर्शी हुए हैं उनके बारे में कोई विचार नहीं है ? यह सिर्फ बाद के आचार्यों ने राम और कृष्ण के तई श्रद्धा बढ़ाने के वास्ते लिख दिया है। आत्मज्ञान में न कोई देश है, न काल है और न कोई और स्थूल प्रकृति का भास है। यह सत्ता निराकार स्वरूप सर्वज्ञ है। उसमें न कुछ हुआ, न कुछ होगा। यह स्थूल प्रकृति केवल तीन गुणों का अचम्भा है। आत्मदर्शी पुरुष उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते हैं। गुणों में गुण बरतते हुए अनन्त प्रकार की सृष्टि का स्वरूप उदय और अस्त होता रहता है। उसके बारे में यथार्थ और पूर्ण रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सिर्फ गुणों के चक्कर का अन्दाजा लगाकर ही कोई कुछ कहे तो कह सकता है।

सच्चे हृदय का निमंत्रण

किसी राज्य में एक निर्धन रहता था। उसकी बडी अभिलाषा थी कि उस देश का राजा किसी दिन उसके घर पधारे। परन्तु उसकी स्थिति इतनी कमजोर थी कि किसी भी तरह से वह राजा का उचित स्वागत और अतिथिस्तकार नहीं कर सकता था। फिर भी हिम्मत करके उसे एक दिन अपनी इच्छा राजा के समक्ष प्रकट कर ही दी। राजा ने उसके घर सहर्ष आना स्वीकार कर लिया। राजा इस बात को भली प्रकार जानता था कि वह आदमी एक छोटी सी झोपड़ी में रहता है। इसलिए उसने अपने सेवकों को पहले ही भेज दिया। सिपाहियों ने झोपड़ी पर पहुँचकर राजसी स्वागत की सारी तैयारी कर दी। मंडप , मंच, गलीचा, झालर, फूलमाला. पताका और किसी प्रकार की कमी न छोड़ी। वह स्थान ऐसा सज गया। मानो एक राजा दूसरे राजा का स्वागत कर रहा हो। सारी तैयारी हो जाने पर राजा आया और उस व्यक्ति से मिलकर उसकी इच्छा पूरी कर दी।

यदि हम राजाओं के राजा भगवान को अपने हृदय में आने का निमंत्रण देंगे तो वह स्वयम् अपने अनुरूप सारी आवश्यक तैयारी कर देंगे। वह स्वयम् हमारे हृदय को शुद्ध बनाकर उसमें आ विराजेंगे। हमें तो केवल उनसे आने की मात्र प्रार्थना करनी है। शेष वह स्वयम् सबकर लेंगे।

यदि हम सच्चे हृदय से निमंत्रण देंगे तो वह अवश्य आयेंगे। यदि हमारा जीवन बेढंगा भी होगा तो प्रभु उसे ढंग वाला स्वयम् बना देंगे ।

परमशान्ती के साधान

1) धन का त्याग (2) तन का त्याग (3) मन का त्याग

ऐसी भावना जिस पुरुष को प्राप्त होती है- यानी जो अपने तन, मन, धन की आसक्ति को त्याग कर अपने आप को हर घड़ी हर लमह प्रभु परायण बनाता है वह ही परम ज्ञानी आत्म आनन्द अर्थात अविनाशी सुख को पाता है जिस सुख की वास्तव में चाहना हर एक जीव- को लगी रहती है।

(1) **धन का त्यागः-**धन के बगैर जीव का निर्वाह होना कठिन है और धन का ज्यादा होना भी जीव को क्लेश के देने वाला है। इसलिये महापुरुषों ने कल्याण का मार्ग यह तजवीज फरमाया कि जो सम्पत्ति अपनी पवित्र कमाई से प्राप्त होवे उसका कुछ हिस्सा अपनी जीविका में खर्च करे और कुछ हिस्सा निष्काम (भाव) से अधिकारी जीवों की सेवा में लगावें । ऐसा निश्चय करने वाला जो पुरुष है वह नाजायज तरीके से कभी धन के मोह में आसक्त न होवे। यह साधन पापों के नाश करने के वाला है।

(2) **तन का त्याग:-**जो इस रीति को धारण करता है वह अपने जीवन को परम शान्ती की तरफ ले जाता है। अर्थात जो दूसरे के दुःखों को मिटाने के लिसें अपने शरीरिक सुखों का त्याग करता है वह ही परम भक्त (भागवान पुरुष) शरीर के तमाम विकारों से छूट कर आत्म निश्चय को प्राप्त होता है।

(3) **मन का त्याग:-**मन का त्याग यह है कि मिथ्या सकंल्प जो अन्तःकरण में उदय होते रहते हैं उनके नतीजा को प्रभु इच्छा में समर्पण करके हर वक्त अपने आप को ईश्वर परायण बनाये और सत पुरुषार्थ को धारण करके हर एक जीव को सुख देना अपना परम धर्म जाने ।

विरह और वैराग्य

प्र. महारज जी . विरह किसे कहते है ?
उ. प्रेमी, विरह की हालत वैराग्य प्राप्त होने के बाद आती है। जब संसार से वैराग्य होता है। तब उस प्रभु को प्राप्त करने के वास्ते तड़प पैदा होती है। इसी को विरह कहते है। फिर प्रभु का प्रेम प्राप्त होने पर विरह शांत हो जाती है।

प्र. वैराग्य का क्या स्वरूप है ?
उ. बुद्धि अभिमान के मल से पवित्र हो करके यथार्थ स्वरूप में जब प्रकृति के चक्र को अनुभव करती है, यानी तमान स्थूल आकार और अपना शरीर भी आदि अंत सहित, खेद (दुःख) सहित कर्म सहित, तबदीली युक्त और नित्य ही भयदायक प्रतीत करती है और किसी वस्तु में भी सत् शांति को अनुभव नही करती है, बल्कि हर एक वस्तु परस्पर नाश के चक्र में अपनी शक्ल को तबदील करती यथार्थ रूप में दिखालाई देती है, ऐसी पवित्र अनुभवता को ही वैराग्य कहा गया है।

प्र. महाराज जी, वैराग्य और विरह कैसे पैदा होता है ?
उ. यह कोई जमीन की पैदावर थोडे है जिसमें बीज डालकर पैदा कर लोगे। संसार की असारता को बार-बार दृढ़ करो। इस न रहने वाले संसार के साथ क्यों ज्यादा लगाव बनाया हुआ है ? पहले खोज करो सत् क्या वस्तु है ? जिस्म और जान का निर्णय करो। जिस समय जान को जानने की लगन लग जावेगी अपने आप ही वैराग्य प्रकट होगा। वैराग्य से विरह आप पैदा होता है। इस प्राणी के सब स्वार्थ के भाव खत्म होने लगते हैं। यानि चित के अन्दर यह दृढ विश्वास बनाये रखो कि अपने असल रूप को जन्म में ही जानकर छोड़ना है। ऐसी अवस्था प्राप्त करनी है जैसी शिव सनकादिक, नारद, कृष्ण, बुद्ध, नानक, इत्यादि ने प्राप्त की। अपना इरादा बड़ा मजबूत रखें, फिर किसी न किसी समय जरूर फतह पाओगे। फिर असली सत्गुरू की मांग अन्तर विखे होगी। वगैर नाम-रूप अनात्म वस्तु को छोड़ने से प्रभु प्रेम पैदा करना कोई आसान नहीं। प्रभु की आश्चर्य रूपों में फैली हुई माया को देखकर अनुमान से उसकी महिमा में मुस्तगर्क (लीन) होना है। संसार की सब चीजें सबक दे रही हैं। सूरज, चांद सितारे जमीन, आसमान किस कदर घड़ रखे हैं। कुदरत को बार-बार विचार करने पर ऐन-उल- यकीन (पूर्णविश्वास) होने लगता है। सर्व आधार शक्ति को बुद्धि विवेक ज्ञान द्वारा जब जानने लगती है, उस परम तत्व की महिमा को अन्तर- विखे जानकर खामोश हो जाती है। सारे संसार को इसका रूप जानकर मगन होकर रूप रेख बिन इस देव शक्ति के अद्भुत रूप में समा जाती है। कोई भाग्यशाली जीव ही शरीर के होते हुए इस विस्माद अवस्था को प्राप्त हुआ करता है। ईश्वर सबको प्रतीत प्रीत बख्शे।

प्र. वैराग्य कैसे उत्पन्न हो सकता है ?
उ. अपने शारीरिक सुखों को दूसरों की सेवा में भेंट करना और मन में निर्मान भाव रखना . अधिक तन, मन, धन से सेवा करके प्रभु इच्छा में निश्चित होना-यह ही एक निर्मल त्याग का मार्ग है। ज्यों-ज्यों गुणी पुरूष पवित्र भावना से इस उपकार के मार्ग में विचरता है, त्यों-त्यों अन्तकरण के दोष नाश हो जाते है। तब सत् स्वरूप में दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है और संसारी पदार्थों से चित्त को वैराग्य हासिल होता है। यह धारणा ही निर्मल भक्ति के अंकुर हैं। यानी शारीरिक सुखों को तुच्छ जानकर प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों के सुख की खातिर अपने आपको जो निष्काम भाव से न्यौछावर करता है, वह ही परम गुणी आत्म - आनन्द का अधिकारी है।
प्र. महाराज जी, कौन से साधन से मनुष्य की वृति वैराग्यवान हो सकती है ?
उ. प्रेमी जी. गुरू के वचनों में अटूट विश्वास करने से तू आप ही वैराग्यवान बन जावेगा। इसलिए गुरू के वचनों को अपनी मानसिक खुराख समझकर नित्य प्रति इसका सेवन करना गुणी पुरूषों का धर्म है। संतों के पास हमेशा ऐसे ही गुणों को लेने के लिए जाना चाहिए जिससे अपने जीवन का सुधार प्राप्त हो और बुलन्दी की तरफ जा सके।

सेवा का नियम दान के मुतलिक

निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसबंध धर्म मार्ग में खर्च जरूरी करना चाहिये। अगर कुछ ज्यादा बचत होये तो पाँचवाँ हिस्सा तक भी धर्म मार्ग में खर्च करना चाहिये। यानी जब तक निष्काम सेवा अधिक प्रीत से धारण न की जाये तब तक कभी भी जीवन पवित्र नहीं हो सकता है और समता नियम अनुकूल सेवा करनी कल्याणकारी है, यानी अनाथ, अभ्यागत, बेवा, रोगी की सहायता और दीगर असूल जो दान के हैं, उनके अनुकूल अपनी कमाई को बरतना हर प्रकार की कल्याण को देने वाला है। दबंध का अपने खर्च में इस्तेमाल करना हानि के देने वाला है। यह ही सतपुरुषों की नीति है। बल्कि ज्यादा से ज्यादा धर्म मार्ग में अपनी सम्पदा का त्याग करना ही असली सिद्धि के देने वाला है। जो प्रेमी समता का अनुयाई है, उसको हर पहलू में अधिक से अधिक कुर्बानी के जजबात (भाव) धारण करने चाहिये। इससे देश की जागृति और देश में शान्ति प्रकाश होती है।

रोजी कौन देता है

एक बार हज़रत मूसा ने ख्वाहिश जाहिर की है अल्लाह में एक बार तुझसे हमकलाम होना

चाहता हूँ।"
हुकम हुआ- "अच्छा कोहतूर पर चले जाइये।"
हजरत मूसा ने प्रार्थना की- " छोटे-छोटे बच्चों को किसके हवाले कर के जाऊँ।"
हुकम हुआ ऐ मूसा-"अपनी अस्सा (लाठी) को जमीन पर मारिये।" आपने हुकम की तामील (मानना) की। जमीन फटी पानी का स्त्रोत निकल आया।
फिर हुकम हुआ- "अपनी अस्सा को दोबारा पानी पर मारिये" पानी पर अस्सा मारते ही उसमें से एक पत्थर निकला। फिर हुकम हुआ- "इस पत्थर पर अस्सा मारिये" ज्यूँ ही पत्थर पर अस्सा को मारा तो पत्थर को दो टुकड़े हो गये और इस के अन्दर से एक कीड़ा सब्ज घास अपने मुहँ में लिए यह कहता हुआ ि नकला - "हमद (शुकर) है उस जात-ऐ-पाक कि जो मुझ को देखता है, मेरा कलाम सुनता, मेरा मुकाम जानता और मुझको रोज़ी पहुँचाता है।"
हुकम हुआ- " मूसा ! जबकि मैं इस कीड़े को जो स्त्रोत की तह में एक पत्थर के अन्दर रहता है. कभी नहीं भूलता तो तेरे बच्चों को भूल जाऊँगा"

कुछ और चुनिंदा उदाहरण

ग्रंथ श्री समता प्रकाश से संसार की रचना

प्रथम मनसा सहज उपजाई बिना कारण रची रचनाई ।।
तीन 'गुण माया घर परगट कीनी अनेक प्रकार रचना रच दीनी ।।
तेज वायु जल पृथ्वी आकाश इन पांचों का सफल तमाश ।।
बुद्धि मन और अहंकार। आठ तत प्रगट रूप संसार ।।
अचरज माया गत होई बिस्तार। चार खानी रचया संसार ।
चांद सूरज की अंत जोती प्रकास । दिवस रैन प्रगटे पख रूत मास ।।

जगत का विस्तार

अरबां तारा मंडल आकास। अरबां पानी पवन बिलास ।।
अरबां दिवस रैन पख मास । अरबा वर्ष करें बिलास ।।
अरबां रवि चन्द्र परगासे । अरबा इन्द्र राज बिलासे ।।
अचरज खेल जगत बिस्तारा । अनन्त सरूप हो किया पसारा ।।
अचरज रचना जगत की, अलेख अभेद अपार ।
"मंगत" गिनती न आवे, जुग-जुग करूं शुमार ।।

नम्रता या दीन भाव

(जगाधरी सम्मेलन के अवसर पर महाराज
जी यहां आकर हमने जो सादगी और
सेवा के नमूनों को देखा है वह आपके
बतलाये हुए आदर्श से गिरा हुआ है। क्या
आप इसको खोलकर बता सकेंगे कि इसके
पतन का क्या कारण है ?
उ. प्रेमी जी. लम्बी चौड़ी बात नहीं सेवादारों
में निर्मानता की कमी है। अन्दर से निर्मान
नहीं है। ऊपर से बनावट करते हैं।
प्र. महाराज जी यह कैसे पता चले कि
सेवादारों की स्थिति सच्ची है या बनावटी ?
उ. लाल जी, सेवादार जब स्तुति से हर्षमान न
हो, निन्दा से दुखी न हो अर्थात् परेशान न
हो तो यह सच्ची निर्मानता का स्वरूप है।
इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह पाखण्ड
है. ढोंग है। जरा नम्र बनकर देखो तो सही,
कितना मजा आता है। जल हमेशा पहाड़ों
के नीचे तराई में आकर ठहरता है . ऊँचाई
में सर्वदा सूखा रहता है।
प्र. महाराज जी, नम्र कैसे रह सकते हैं ?
उ. इसके लिए यह ध्यान हर समय रखना
आवश्यक है कि शरीर नापायेदार (नाशवान)
है और पल पल विखे नाश को प्राप्त हो
रहा है। इसकी किस शै (वस्तु) पर तू
घमंड करता है ? किसका तुझे मान है ? तेरे
जैसे आलातरी (सर्वश्रेष्ठ) असंखों लोग इस
संसार में आये और चले गये। ऐसा विचार
करते-करते बुद्धि नम्र हो जाती है।
प्र. महाराज जी, हमारे अन्दर निर्मान भाव आ
रहा है या नहीं, इसकी क्या कसौटी है ?
उ. लाल जी, हमारे अन्दर निर्मान भाव आ रहा
है इसके लिए सत्पुरुषों के वचनों में दृढ
विश्वास और श्रद्धा का बढ़ने जाना और
सत्पुरुषों के वास्ते मन के अन्दर अधिक
से अधिक आकर्षण उत्पन्न होना, उनके
वचनों में अपने आप को मिटाना और उनके
वचनों को अपने जीवन में घटाने लग जाना
आवश्यक है। ऐसे पुरुष की बुद्धि बड़ी
तीव्र होने लग जाती है और उसी में यह
गुण पैदा हो जाते हैं। वह गुण और दोषों
को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से, बड़े गौर और
बड़ी बारीकी से जाँचता है। उन दोषों से
वीतराग होने का यत्न करता है। यदि 24
घन्टों में से एक पल भी किसी की चेष्टा
शरीर के भोगों में रहती है तो वह पुरुष
आत्मस्थिति से दूर ही समझना चाहिए और
जो कुछ ही बाहरी रूप दिखाई देता है वह
सब दिखावा है । पाखंड है। जब बुद्धि में
शरीर का पूर्ण विनाश निश्चय में आ जावे
तब उस पुरुष में गरीबी, निर्मानता, धीरता,
दीनता इत्यादि महागुण आ जाते हैं।
प्र. महाराज जी, आप अत्यन्त दीन भाव के शब्द
उच्चारण करते हैं। आपने तो परमस्थिति
प्राप्त कर ली है। फिर भी आम फरमाते हैं-

ऐसी दात करो दातार । मांगनहार खड़ा दरबार ।
पूरणसेवासबने पाई । तुददरबारमांगनजो आई ।

अबकी बारी तोड़ निभाओ करू अरदास सुना प्रमराओ ।
दया करोप्रम अंत किरपालु साची भगति तेरे चरण दयालू ।।
माँगू भगती दीख्या, तुद दर गया भिखारी ।
'मंगत तेरी दात से, नित जाऊँ बलिहारी ।।

इतने दीनभाव के शब्द जिज्ञासु को उच्चारण
करने चाहिए, न कि किसी सिद्ध पुरुष को।
उ. प्रेमी, इनका हिसाब-किताब खत्म है। यह
सब तुम्हारे लिये ही बोला जा रहा है। जो
प्रभु प्रेमी सत् मार्ग में विश्वास करने वाले होंगे
वे सब इनका ही रूप हैं। इस देववाणी को
पढ़कर अपना आना-जाना बन्द करेंगे। इन
शब्दों के द्वारा ही प्रेमी के अन्दर प्रेम पैदा
होता है। परमपद प्राप्ति के बाद और भी
निर्मान भाव प्रकट करना ही उचित है।
प्र. महाराज जी कहा है-
भक्तों और संतों की एक यही पहचान।
आप अमाने ही रहें, देत और को मान॥
कृपया इसको स्पष्ट करें।
उ. लाल जी, संत लोग अपने आप को निर्मान
किये और देह की ममता से अबूर (छुटकारा)
पाये हुए होते हैं। उनके पास जो भी अभिमानी
या अहंभाव वाले जीव आते हैं जिन्हें मान
की इच्छा होती है, संत लोग उन्हें मान दे
देते हैं। जिसका अहंभाव दूर करना होता है
उसका पासा घड़ देते हैं। अहं चूर कर देते
हैं। सेवक को सही सेवक बनाने के लिए
यानी उसे निर्मान बनाने के लिए सत् पुरुष
उससे निर्मान भाव की बोली बोलते हैं। इस
मान गुमान से तभी खुलासी होती है जब बुद्धि
खुशी गमी से परे हो जावे।

जो मनुष्य निष्कपट एवं सरल होता है
उसी की आत्मा शुद्ध होती है और जिसकी
आत्मा शुद्ध होती है उसी के पास धर्म ठहर
सकता है।

(भगवान् महावीर)

जैसे सूर्य आकाश में छिपकर नहीं विचर
सकता वैसे ही महापुरूष भी संसार में
छिपकर नहीं रह सकते।

(वेदव्यास)

मन सत् परायण कैसे हो ?

प्रेमी! भय से ही मन सत् परायण होता है। इस
वास्ते मौत का भय या गुरू का भय या ईश्वर का
भय मानुष के वास्ते होना लाजमी है। ऐसे भय की
दृढता से भाव पैदा होता है। यानि अपनी जीवन
उन्नति का विचार प्रगट होता है और भाव से
भक्ति व भक्ति से निर्मल प्रेम पाप्त होता है। यह
ही दृढता मानसिक शान्ति के देने वाली है।
प्रेमी, पहले गलत और सही हालात को
समझो जीवन के हालात को हर एक समझ
रहा है। मगर सही नही समझ रहा है और सही
न समझने के कारण गलत हालात को पकड़
रहा है। मन एक ऐसी चीज है कि जब तक
गलत और सही का निर्णय न समझे सही की
तरफ नहीं जाएगा। मन को पकड़ने का तरीका
ईश्वर परायण होना और नाम सिमरण है।
इस तरीके को किसी महात्मा से प्राप्त करो
और प्राप्त करके हृदय से धारण करो। सही
निश्चय से इसे पकड़ो। उस तरीके को धारण
करते-करते मन वस हो जावेगा। मन को **एक मिन्ट** रोकने वाला पूर्ण अभ्यासी है, साधक है।
ईश्वर को अनुभव कर लेता है। **पाँच मिन्ट**
रोकने वाला पूर्ण सिद्ध है।

मसीह के दस नियम

1. यही प्रयाप्त नहीं कि तुम किसी का वध न

करो बल्कि किसी पर क्रोध भी न करें।
2. यह प्रयाप्त नहीं कि तुम दुर्व्यवहार न करो बल्कि किसी स्त्री को कुदृष्टि से भी न देखो।
3. बदला लेने का बिल्कुल ख्याल न करना। बल्कि शरीर का मुकाबला न करना। यदि कोई दाहिने गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा गाल भी उस ओर कर दे। यदि तेरा कोई कुर्ता चाहे तो उसे अपना चोगा भी दे दे 1
4. यही नहीं कि झूठी कसम न खाओ बल्कि बिल्कुल कसम न खाओ।
5.तू न केवल अपने पड़ोसी से प्रेमकर बल्कि अपने शत्रुओं और सताने वालों से भी प्रेमकर उनके साथ भलाई कर।
6. सदा सच्चाई से काम लो। केवल लोगों के लिए दान मत कर। निमाज और रोजे की नियमबद्धता अपने लिए कर न कि लोगों को दिखाने के लिए।
7. अपने लिए भूमि पर माल व धन संचित न कर। बल्कि अपना धन आकाश पर इक्ट्ठा कर। जहाँ उसे किसी प्रकार की हानि का भय नहीं पहुँच सकता।
8. लोगों को दूसरों की आँख का तिनका नज़र आ जाता है। अपनी आँख का छतीर नज़र नहीं आता। अतः तू किसी की नुक्ताचीनी न कर बल्कि दोषों को दूर कर।
9. जो बर्ताव तुम चाहते हो लोग तुम्हारे साथ करें वही तुम भी उनका साथ करो। एक व्यक्ति दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकता। इसी तरह तुम ईश्वर और धन दोनों की सेवा नहीं कर सकते।
10. निश्चिंत होकर तुम ईश्वर पर भरोसा रखो। वह स्वयम् तुम्हारी सब आवश्यकताएं पूर्ण कर देगा।
लोगों ने मसीह ने पूछा, खुदा का सब बड़ा हुक्म क्या है ?
"खुदावन्दो ! ईश्वर एक ही है। तुम अपने दिल और जान, ताकत और बुद्धि से उससे प्यार कर और दूसरा आदेश यह है कि अपने पड़ोसी से इतना प्रेम कर जितना अपने आपसे करता है। मसीह ने कहा, "मेरा प्रयोजन तो यही है कि मैं अपने आसमानी पिता की इच्छा पूर्ण करूँ। यानि जिस ने मुझे इस संसार में भेजा है। मैं उसका काम करूँ।

वाद-विवाद करना उचित नहीं

आशीर्वाद पहुँचे पत्रका मिल तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी बहस मुबाहसे (वाद-विवाद) करने अच्छे नहीं। तुम अपने सुधार का विचार करें। आखिर जवाब यही है कि हम सबको मानते हैं। अपने आचार-विचार का दुरूस्त करना परम धर्म समझते हैं। जो बुजुगों की आड लेकर पाप करते हैं वह कभी भी समता के धर्म को पालन नहीं कर सकते। इस वास्ते तुम अपनी बेहतरी करें। ख्वाहे (चाहे) दो आदमी हों सत्संग जरूरी किया करो। इसी से बरकत (तरक्की) होवेगी।